सैंटर फॉर डिस्टैंस एंड आनलाईन ऐजुकेशन

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : एम.ए. भाग–1 *सैमेस्टर–1*

पत्र : द्वितीय (हिन्दी भाषा उद्भव और विकास) *एकांश संख्या : 1*

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

1.1 हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.2 मध्यकालीन आर्य भाषाएँ

1.3 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

1.4 हिन्दी की उपभाषाएँ और उनकी बोलियाँ

Department website : www.pbidde.org

पेपर दो
हिंदी भाषा : उद्‌भव और विकास (HINM2PUP-T-102)

प्राईवेट विद्यार्थियों के लिए
पूर्णांक : 100
समय : 3 घण्टे
प्रतिशत : 35

रैगुलर और ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग विद्यार्थियों के लिए
लिखित परीक्षा : 75 अंक
आंतरिक मूल्यांकन : 25 अंक
पास अंक : लिखित में 26 अंक
आंतरिक में 9 अंक

उद्देश्य :–

1. विद्यार्थियों की भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
2. व्याकरण के माध्यम से विद्यार्थियों की भाषा को समृद्ध करना।
3. हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और हिंदी की संवैधानिक स्थिति से परिचित करवाना।

अधिगम प्रतिफल :–

1. विद्यार्थियों के हिंदी भाषा से संबंधित ज्ञान में वृद्धि होगी।
2. विद्यार्थी हिंदी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास से परिचित होगें।
3. विद्यार्थी भाषा व लिपि के विभिन्न चरणों से परिचित होंगे।

निर्धारित पाठ्यक्रम

1. **हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :** प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं– वैदिक तथा लौकिक संस्कृत और उनकी विशेषताएं। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं– पालि, प्राकृत, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, अपभ्रंश और उनकी विशेषताएं। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं और उनका वर्गीकरण।
2. **हिंदी का भौगोलिक विस्तार :** हिंदी की उपभाषाएं– पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी तथा पहाड़ी और उनकी बोलियां। खड़ी बोली, ब्रज और अवधी की विशेषताएं।
3. **हिंदी का भाषिक स्वरूप :** हिंदी शब्द–संरचना–उपसर्ग, प्रत्यय, समास। रूपरचना, लिंग, वचन और कारक–व्यवस्था के संदर्भ में। हिंदी के संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रियारूप। हिंदी वाक्य–रचना, पदक्रम और अन्विति।
4. **हिंदी की संवैधानिक स्थिति, मानकीकरण।**

5. **देवनागरी लिपि :** उत्पत्ति, विकास, विशेषताएं और मानकीकरण।

छात्रों और परीक्षकों के लिए आवश्यक निर्देश

इस पेपर में प्रश्न दो स्तरों पर पूछे जाएंगे। पहले स्तर पर आठ दीर्घ प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें से चार का उत्तर देना होगा। यह प्रश्न परीक्षक पूरे पाठ्यक्रम से इस प्रकार पूछे कि छात्र को पूरे पाठ्यक्रम से उत्तर देना जरूरी हो। दूसरे स्तर पर पूरे पाठ्यक्रम से सात (प्राईवेट विद्यार्थियों के लिए आठ) लघु प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनका बिना विकल्प के सात से आठ पंक्तियों तक उत्तर देना अनिवार्य है।अंक विभाजन

चार दीर्घ प्रश्न– 4×10=40(रै.,ओ. एंड डि.ल)

4×15=60(प्रा.)

लघु प्रश्न – 7×5 = 35(रै.,ओ. एंड डि.ल)

8×5 = 40(प्रा.)

अध्ययन के लिए सहायक पुस्तक सूची

1. हिन्दी भाषा का इतिहास – भोलानाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा।
3. हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास– उदय नारायण तिवारी।
4. भारतीय आर्य भाषाएं और हिन्दी भाषा– सुनीति कुमार चटर्जी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. हिन्दी भाषा – कैलाश चन्द्र भाटिया, साहित्य भवन, प्रा. लि. इलाहाबाद।
6. हिन्दी भाषा : इतिहास और स्वरूप – डॉ. राजमणि शर्मा
7. हिन्दी भाषा : अतीत और वर्तमान, डॉ. उषा लाल, निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र

Updated on May 2023

पाठ संख्या–1.1
लेखिका–डॉ0 सुरिन्द्रपाल कौर

हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा :

1.1.0 उद्देश्य
1.1.1 प्रस्तावना
1.1.2 प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ
1.1.2.1 वैदिक–वैदिक भाषा की सामान्य विशेषताएँ
1.1.2.2 लौकिक संस्कृत – सामान्य विशेषताएँ
1.1.2.3 स्वयं जांच अभ्यास
1.1.3 सारांश
1.1.4 प्रश्नावली
1.1.5 सहायक पुस्तकें

1.1.0 उद्देश्य :

पेपर 'हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास' के पहले अध्याय में विद्यार्थियों को हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान की जा रही है। भाषा मानव व्यवहार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। मानव सभ्यता का विकास अनुभवों के आदान–प्रदान से होता है। अनुभवों का विनिमय दो प्रकार से होता है–एक अनुकरण द्वारा और दूसरा भाषा के माध्यम से। परस्पर सम्बन्ध रखने वाली भाषाओं को एक ही परिवार के अंतर्गत रखा जाता है। इस समय संसार में कुल बारह–तेरह भाषा परिवार हैं। हिन्दी का सम्बन्ध भारोपीय भाषा परिवार से है।

1.1 प्रस्तावना :

भारोपीय (भारत और यूरोपीय) परिवार संसार का सबसे बड़ा भाषा परिवार है। भूमण्डल की कुल लगभग 350 करोड़ जनसंख्या में इस परिवार–की भाषाएँ बोलने वाली की संख्या 150 करोड़ है। इसकी प्रमुख भाषाएँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता, अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, फ्रांसीसी, हिन्दी, मराठी, बंगानी आदि हैं।

मुख्यतः आर्यभाषा के दो वर्ग हैं– (1) यूरोपीय आर्य भाषाएँ और (2) भारत–ईरानी आर्य भाषाएँ। भारत–ईरानी वर्ग की तीन शाखाएँ बताई जाती हैं–(1) ईरानी (ईरान और अफगानिस्तान की भाषाएँ) (2)

दरद (कश्मीर और पामीर के पूर्व–दक्षिण की भाषाएँ) और (3) भारतीय आर्यभाषाएँ। धर्म, समाज, साहित्य, कला और संस्कृति की दृष्टि से भारतीय आर्यभाषा बहुत महत्वपूर्ण है। संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ–ऋग्वेद–इसी भाषा में है।

1.1.2 प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ :

भारतीय आर्यभाषा का इतिहास भारत में आर्यों के आने के बाद से शुरू होता है। आर्य लोग अपने देश में कहाँ से और कब आए, इस पर इतिहासकार एक मत नहीं हैं। कई विद्वान् यह मानते हैं कि आर्य मध्यएशिया के निवासी थे। वे वहाँ से पश्चिम की ओर जाकर यूरोप में बसे और कुछ दक्षिण की ओर से ईरान और अफगानिस्तान में फैल गए। कुछ विद्वान् इस मत के है कि वे रूस के दक्षिण पूर्वी मैदानी भाग में रहते थे और वहीं से दक्षिण और पश्चिम की ओर फैले। अब भारतीय इतिहासकार एवं विद्वान् यह सिद्ध कर रहे हैं कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आए, वे हिन्दुकुश के आस–पास रहते थे। उस समय ईरान, अफगानिस्तान और भारत कोई अलग देश नहीं थे, यहीं से वे पश्चिम की ओर गए और भारत में फैले। ऋग्वेद में इसी प्रदेश का वर्णन 'सप्त सैंधव' नाम से किया गया है। जो भी हो, 3000 ई. पूर्व के लगभग आर्यों के दल उत्तर पश्चिमी सीमा से हिन्दुकुश पार कर भारत मे फैलने लगे। उस समय पश्चिम में 'सिन्धुघाटी' में द्रविड़ों की सभ्यता फलफूल रही थी। अन्य स्थानों में कोल, किरात, मुंड, शवर, यक्ष, नाग और निषाद जातियों के लोग रहते थे जिन्हें अनार्य कहा गया।

सबसे पहले उत्तर पश्चिम सीमा प्रदेश और पंजाब में आर्यों की बस्तियाँ बसीं। उन्होंने पंजाब की सात नदियों–सिन्धु, झेलम, चिनाव, रावी, व्यास, सतलुज और सरस्वती के प्रदेश को ''सप्त सिन्धु'' नाम दिया। आर्यों के विभिन्न दलों ने इस प्रदेश में अपने राज्य स्थापित किए। इसके पश्चात् वे गंगा–यमुना की उपजाऊ भूमि में बस गए और धीरे–धीरे समस्त उत्तरी भारत में फैल गए। उनकी प्रभुता 'हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक के प्रदेश में स्थापित हो गई। इस प्रदेश को उन्होंने ''आर्यावर्त'' का नाम दिया। इस काल में ऋग्वेद के बाद शेष तीन वेदों यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तथा ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों की रचना हुई। आर्यों के आने से पूर्व भारत में प्रमुख चार जातियाँ रहती थीं, जिनमें नेग्रिटो, आस्ट्रिक, किरात, द्रविड़ हैं। नेग्रिटो भारत की प्राचीनतम जाति है, जो मूलतः अफ्रीका के निवासी थे और ये दक्षिणी अरब, ईरान होते हुए भारत आए थे। दक्षिण भारत की तमिलभाषी पनियर, कदिर, कुरुम्बा, इरुला आदि छोटी–मोटी जातियों के रूप में इनके अवशेष हैं। इनकी भाषा का कोई विशेष प्रभाव आर्यभाषाओं पर नहीं पड़ा है। बंगला में बादुड़ (बाद), बिहारी में चमदड़िया (चमगादड़) आदि कुछ शब्द नेग्रिटो जाति के हैं। नेग्रिटो जाति के बाद आस्ट्रिक आए। ये भूमध्य सागर से इराक, ईरान होते हुए भारत में आए थे। भारत की कोल, मुण्डा, खासी, निकोबारी आदि भाषाएँ इन्हीं की हैं। कार्पास, कदली, बाण, ताम्बूल, पिनाक, गंगा, लिंग, कम्बल आदि अनेक शब्द आस्ट्रिक भाषा के हैं।

आस्ट्रिक लोगों के बाद किरात भारत में आए। ये आदि मंगोल थे। चीनी सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माता यही थे। इनकी एक शाखा भारत में पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार, आसाम, बंगाल एवं उड़ीसा में फैल गयी। यजुर्वेद में इनका उल्लेख मिलता है। 'खोखा' (मछली का जाल) फेटा आदि शब्द इन्हीं के हैं।

भारत में आने वाली चौथी जाति द्रविड़ों की थी। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार इनका मूल स्थान अफ्रीका

है। वहाँ से ये लोग ईरान, अफगानिस्तान होते हुए भारत में फैल गये। आज तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि इनके वृहत् भाषा–क्षेत्रा के अवशेष हैं। भाषा के क्षेत्रा में आर्यभाषाओं पर द्रविड़ प्रभाव पर्याप्त हैं। ध्वनियों में ट वर्ग द्रविड़ भाषा से ही आर्यभाषाओं में आया है। अणु, कला, गण, नाना, पुष्प, बीज, रात्रिा, सायं, तंडुल, मर्कट, शव, झगड़ा, सीप, खूँटा आदि शब्द द्रविड़ भाषा से भारतीय आर्यभाषाओं में आए हैं।

काल विभाजन :

भारत में आर्यभाषा का प्रारंभ 1500 ई. पू. के आसपास से माना जाता है। तब से आज तक भारतीय आर्यभाषा की आयु साढ़े तीन हजार वर्षों की हो चुकी है। भाषिक विशेषताओं के आधार पर भारतीय भाषा की इस लम्बी आयु को तीन कालों में बाँटा गया है।

(क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ (प्रा. भा. आ.)
– 1500 ई. पू. से 500 ई. पू. तक
(वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत)

(ख) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ (म.भा.आ.)
– 500 ई. पू. से 1000 ई. तक
(पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट)

(ग) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (आ.भा.आ.)
– 1000 ई. से वर्तमान समय तक।
(बंगला, उड़िया, असमी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, सिंधी आदि)

प्रथम प्राचीन भारतीय आर्याभाषाओं में वैदिक संस्कृत का समय डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 1500 ई. पू. से 800 ई. पू. तक है और लौकिक संस्कृत की कालावधि 800 ई. पू. से 500 ई. पू. है।

द्वितीय मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में पालि 500 ई. पू. से 1 ई. तक प्राकृत सन् 1 ई. से 500 ई. तक एवं अपभ्रंश तथा अवहट्ट की कालावधि 500 ई. से 1000 ई. तक है।

आधुनिक काल की भाषाएँ अनेक हैं, हिन्दी, उनमें एक है, जो सब भारतीय भाषाओं की बड़ी बहन है और सब से अधिक जनसमूह द्वारा बोली समझी जाती है। हिन्दी की तीन कालक्रमिक स्थितियाँ हैं–प्राचीन हिन्दी (1000 ई. से 1400 ई.), मध्यकालीन हिन्दी (1400 ई. से 1850 ई.) और आधुनिक हिन्दी (1850 ई. से.... .....)

1.1.2 प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ :

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के दो रूप हैं– (1) वैदिक और (2) लौकिक संस्कृत या संस्कृत भाषा।

1.1.2.1 वैदिक संस्कृत :

वैदिक संस्कृत को वैदिक भाषा, छान्दस् या प्राचीन संस्कृत भी कहा जाता है। वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा प्राचीन उपनिषद् इसी भाषा में लिखे गए हैं। यों इन सभी में भाषा का कोई एक सुनिश्चित

रूप नहीं है। इसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलता है।

ऋग्वेद छन्दोबद्ध है, अतः उसे छन्दस कहा जाता है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में गद्य अंश भी है, इससे प्राचीन गद्य का स्वरूप ज्ञात होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी गद्य में है, इनसे प्रचलित भाषा का स्वरूप ज्ञात होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी गद्य मे है, इनसे प्रचलित भाषा का स्वरूप ज्ञात होता है।

वैदिक संस्कृत लगभग 700 वर्षों तक जनभाषा थी। यह मुख्यरूप से साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी। अतः समस्त प्राचीनतम संस्कृत वाङ्मय वैदिक संस्कृत में मिलता है किन्तु भाषा का यह रूप बोलचाल का रूप न होकर बोलचाल की वैदिक संस्कृत पर आधारित साहित्यिक रूप है।

वैदिक संस्कृत पर अनार्य जातियों की भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। यजुर्वेद संहिता की भाषा में अनार्य तत्वों का समीक्षण किया जा सकता है। अथर्ववेद की संस्कृति और भाषा में ये तत्व और भी अधिक मात्राा में पाए जाते हैं। ब्राह्मण, ग्रन्थों, आरण्यकों और उपनिषदों की भाषा पूरे तौर पर तत्कालीन मध्यदेश की आर्यभाषा है। सम्भवतः मूल वैदिक भाषा की रक्षा के लिए ही वेदांगों की रचना की गई है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष और छंद ये छः वेदांग हैं। इनमें शिक्षा उच्चारण से, कल्प यज्ञविधान के सूत्रा से, व्याकरण वैदिक भाषा के रूप और प्रयोग से, निरूक्त वैदिक पारिभाषिक शब्दों की व्युत्पति से, ज्योतिष समय निर्धारण से और छन्द साहित्यशास्त्रा से सम्बन्धित हैं।

वैदिक भाषा की सामान्य विशेषताएँ

वैदिक साहित्य में वैदिक भाषा का विकास होता दिखाई पड़ता है, फिर भी कुछ ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक बातें ऐसी हैं जिनको वैदिक भाषा की सामान्य विशेषताएँ माना जा सकता है।

1. ध्वनिगत विशेषताएँ –

वैदिक ध्वनिसमूह में निम्नलिखित ध्वनियाँ है–स्वर–

1. मूल स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ओ
2. संयुक्त स्वर – ऐ (अइ) औ (अउ)

व्यंजन

3. कवर्ग – क्, ख्, ग्, घ्, ङ् (कण्ठ्य)
4. चवर्ग – व्, छ्, ज्, झ्, ़ ् (तालव्य)
5. टवर्ग – ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, लह्, ल (मूर्धन्य)
6. तवर्ग – त्, थ्, द्, ध्, न्, (दन्त्य)
7. पवर्ग – प्, फ्, ब्, भ्, म् (ओष्ठ्य)
8. अन्तस्थ – य्, र्, ल्, व्
9. संघर्षी – श्, ष्, स्, ह्, विसर्ग (:) (ऊष्म)

   जिह्वामूलीय (‸) उपध्मानीय

10. अनुनासिक – अनुस्वार ( ) (नासिक्य)

वैदिक भाषा में विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ''ह'' की संध्वनियां थीं। अ, व, य आदि कई अन्य ध्वनियों की भी कई संध्वनियाँ थीं।

वैदिक 'भाषा में ग्वंग ध्वनियाँ थी, संस्कृत में ग्वंग ध्वनि नहीं है, अनुस्वार है। वैदिक भाषा में ह्रस्च असै उरर्घ स्वर के अतिरिक्त प्लुत, (तीन मात्राा के) स्वर भी थे।

2. स्वराघात :

वैदिक भाषा की एक प्रधान विशेषता है स्वराघात। इसमें तीन प्रकार के स्वराघात हैं–(1) उदात्त (2) अनुदात्त और (3) स्वरित।

अनुदात्त स्वर प्रकट करने के लिए अक्षर के नीचे पड़ी रेखा (–) तथा स्वरित के लिए अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा (।) खींची जाती है। यथा–'जुहोति', इसमें ''जु'' अनुदात्त, ''हो'' उदात्त एवं ''ति'' – स्वरित है। वैदिक मंत्राों के उच्चारण में इनका ध्यान रखना अनिवार्य था। स्वराघात के कारण शब्द का अर्थ भी बदल जाता था। जैसे ''इन्द्रशत्राु'' का अर्थ है जिसका शत्राु इन्द्र है इसमें बहुव्रीहि समास है किन्तु 'इन्द्रशत्राु' का अर्थ है, इन्द्र का शत्राु, इसमें तत्पुरुष समास है। वेंकट माधव ने लिखा है–''जैसे अन्धकार में दीपकों की सहायता से चलता हुआ कहीं ठोकर नहीं खाता, इसी प्रकार स्वराघात (स्वर) की सहायता से किए गए अर्थ संदेहशून्य या स्फुट होते हैं।''

3. व्याकरणिक विशेषताएँ :

वैदिक भाषा में तीन लिंग थे – पुलिंग, स्त्रीालिंग और नपुंसक लिंग।

कारक विभक्तियाँ आठ थीं – कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन। व्याकरण की जटिलता वैदिक भाषा में बहुत अधिक थी, क्योंकि एक–एक कारक के रूपों में विविधता थी। उदाहरण के लिए – कर्ता द्विवचन में देवा, देवी और कर्ता बहुवचन में देवाः, देवासः रूप मिलते हैं। कई शब्द नपुसंक लिंग और पुलिंग दोनों रूपों में पाए जाते हैं।

वैदिक भाषा में सर्वनामों की रूपरचना भी अधिक जटिल थी। उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष में तो लिंग भेद नहीं था, परन्तु अन्य पुरूष में लिंग भेद था। यथा–अन्य पुरुष अधिकरण एक वचन में दो रूप हैं सस्मिन् और तस्मन्।

4. क्रियागत विशेषताएँ :

वैदिक भाषा में धातुएँ दस गणों में विभक्त थीं। प्रत्येक गण की धातुओं का रूपान्तर या तो परस्मैपद में होता था, जैसे ''गच्छति'' या आत्मनेपद में जैसे 'बांधते'। कुछ धातुएँ उभयपद थीं। आत्मनेपदी रूपों का प्रयोग केवल अपने लिए होता था तथा परस्मैपद का दूसरों के लिए। क्रिया रूप तीनों वचनों एवं तीनों पुरुषों में होते थे। क्रिया के बारह लकार थे – लट्, लिट्, लङ्, लुङ्, लुट्, लृट्, लोट् विधिलिंङ, लृङ्, लेट् और लेङ्। ऋग्वेद और अथर्ववेद में लेट् लकार का प्रयोग बहुत मिलता है किन्तु धीरे–धीरे इसका प्रयोग कम होता गया और अन्त में लौकिक संस्कृत में पूर्णतः समाप्त हो गया। वैदिक भाषा में भविष्य के रूप बहुत कम है। उसके स्थान

पर प्रायः संभावनार्थ या निश्चयार्थ का प्रयोग मिलता है।

5. समासगत विशेषताएँ :

वैदिक भाषा में समास रचना की परम्परा मूल भारोपीय एवं भारत–ईरानी भाषा से आई है। वैदिक समस्त पद प्रायः दो शब्दों के ही मिलते हैं। इससे अधिक शब्दों के समास अत्यन्त विरल हैं। जहाँ तक समास के रूपों का प्रश्न है, वैदिक भाषा में केवल ततपुरुष, कर्मधारय, बहुब्रीहि एवं द्वन्द्व, ये चार ही समास मिलते हैं। शेष दो समास बाद में विकसित हुए हैं।

6. शब्दावली :

प्राचीन आर्यभाषा का शब्द भंडार बहुत सम्पन्न है। सांस्कृतिक शब्दों की तो भरमार है। वेद के कतिपय विशिष्ट शब्द और उनके तत्कालीन अर्थ इस प्रकार हैं –

अच् (निवेदन करना), अछ (की ओर), अभात् (पास से), अवस (नीचे), अहिल्या (रात्रि), आत् (अब), आ दिवा (प्रतिदिन), आरे (दूर), आसात् (पास से), इदा (अब), इत्था (ऐसे), इध (यहाँ), गौतम (चन्द्रमा), घृणा (दया), जन्तु (बच्चा), जगदग्नि (आँख), तात् (ऐसे), धारा (वाणी), नकीम (बिल्कुल नहीं), नकि (कोई नहीं), नः (हम), पर्वत (मेघ), रायस् (धन), विप्र (बुद्धिमान्), समिध (आहुति), सधा (साथ–साथ)। वैदिक भाषा में अनेक आर्येतर शब्दों का प्रयोग होने लगा था। जैसे –अणु, अरणि, कपि, काल, गण, नाना, पुष्प, मयूर, तंडुल, मर्कट आदि शब्द द्रविड़ भाषा से आए हैं तो वार, कंबल, बाण, अंग (स्थानवाची) आदि शब्द आस्ट्रिक भाषा से आए हैं।

7. बोलियाँ तथा उपभाषाएँ :

वैदिक काल में प्राचीन आर्यभाषा के कम से कम तीन रूप या तीन बोलियाँ स्पष्ट रूप से मिलती हैं– (1) पश्चिमोत्तरी बोली (2) मध्यवर्ती बोली और (3) पूर्वी बोली।

पश्चिमोत्तरी का क्षेत्रा अफगानिस्तान से पंजाब तक था और इसमें ''र'' ध्वनि की प्रधानता थी। मध्यवर्ती का क्षेत्रा पंजाब से मध्य उत्तर प्रदेश तक था और इसमें 'र' और 'ल' का अधिक प्रयोग होता था। तीसरी पूर्वी बोली का क्षेत्रा मध्य उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग था और इसमें 'ल' की प्रमुखता थी।

ऋग्वेद में पश्चिमोत्तरी बोली का प्रतिनिधित्व हुआ है। इसी बोली को आदर्श माना गया। उसे उस समय 'उदीच्य' कहते थे।

सारांश :

1. वैदिक भाषा की पदरचना श्लिष्ट योगात्मक थी।
2. धातुरूपों में लट् लकार का अधिक प्रयोग होता था। संस्कृत में वह नहीं रहा।
3. कृत् प्रत्ययों में तुम के अर्थ में असे, अध्यै आदि 16 प्रत्यय थे। संस्कृत में तुम् ही शेष रहा।
4. वेद में संगीतात्मक स्वर की प्रमुखता थी।
5. वैदिक भाषा में ह्रस्व और दीर्घ के साथ प्लुत स्वर का भी प्रयोग होता था।

6. वैदिक भाषा में 'ऌ' स्वर का प्रयोग होता था।

7. सन्धि नियमों में पर्याप्त शिथिलता थी।

8. वैदिक 'भाषा में मध्य स्वरागम के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे पृथ्वी–पृथिवी, दर्शत–दरशत आदि।

9. वैदिक भाषा में ल् के स्थान पर 'र्' का प्रयोग मिलता है। जैसे–सलिल के स्थान पर 'सरिर्'।

10. वैदिक भाषा में उपसर्गों का स्वतंत्रा प्रयोग होता था। जैसे 'मानुषान् अभि'।

11. वैदिक भाषा में स्वराघात का महत्वपूर्ण स्थान था।

12. वैदिक भाषा में ड ढ के स्थान पर वैदिक ळ और ळह छवनियाँ प्रयुक्त होती हैं। उसी से ड और ढ का विकास हुआ।

13. वैदिक भाषा में अनुस्वार के स्थान पर ह्रस्व और दीर्घ ग्वुं–ग्वूं का प्रयोग किया जाता था। ये नासिक्य के साथ कंठ्य भी हैं।

1.1.2.2 लौकिक संस्कृत :

लौकिक संस्कृत को प्रायः संस्कृत ही कहा जाता है। संस्कृत का अर्थ है–संस्कार की गई या शिष्ट भाषा। वैदिक काल में तीन बोलियाँ थीं–पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती और पूर्वी। लौकिक संस्कृत या संस्कृत भाषा पश्चिमोत्तरी बोली का ही विकसित रूप है। इस पर मध्यवर्ती और पूर्वी बोली का भी कुछ प्रभाव पड़ा है।

बोलचाल की भाषा होने के कारण संस्कृत भाषा में न तो स्थिरता थी और न एकरूपता। इसलिये पाणिनी से पूर्व कुछ विद्वानों ने संस्कृत में एकरूपता और स्थिरता लाने का प्रयास किया, परन्तु वास्तविक वैज्ञानिक कार्य पाणिनी ने किया, जिनके व्याकरणिक नियमों का पालन आज तक होता है। इस प्रकार उस भाषा का परिष्कार–संस्कार होने से ही इसका नाम संस्कृत पड़ा।

संस्कृत नाम पाणिनी के बाद पड़ा। पाणिनी ने इसे 'भाषा' कहा है जिससे स्पष्ट होता है कि यह बोलचाल की भाषा थी। साहित्य में भी इसी भाषा का प्रयोग किया जाता था। हार्नले, बेवर तथा ग्रियर्सन आदि पश्चिमी विद्वानों ने संस्कृत का क्लैसिकल संस्कृत नाम देकर उसे केवल साहित्यिक भाषा माना है, जो निराधार है। यास्क, कात्यायन, पतंजलि आदि ने भी इसे लोक व्यवहार की भाषा माना है।

संस्कृत का सबसे प्राचीन एवं आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण 500 ई. पू. का है। महाभारत, पुराण, काव्य, नाटक आदि ग्रन्थ 500 ई. पू. से आज तक अविच्छिन्न रूप से अपना गौरव स्थापित किए हुए हैं। संस्कृत सारे देश की समन्वय–शक्ति बनकर उत्तर, दक्षिण पूर्व, पश्चिम सर्वत्रा छा गई। आज की सभी भारतीय भाषाओं की शब्द संपत्ति इसी स्त्राोत से सम्पन्न होती है, विशेषतः ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रा में।

लौकिक संस्कृत की सामान्य विशेषताएँ एवं दोनों में अन्तर :

1. ध्वनिगत विशेषताएँ :

संस्कृत ध्वनियों के विषय में विशेष उल्लेखनीय बातें ये हैं –

1. वैदिक संस्कृत में 52 ध्वनियाँ थीं। संस्कृत में 48 ध्वनियाँ हैं अर्थात् वैदिक भाषा की चार ध्वनियाँ ळ, ळह, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय–संस्कृत में नहीं मिलती। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के स्थान पर विसर्ग (:) का ही प्रयोग होता है।
2. वैदिक भाषा में लृ, ॠ, ॡ के उच्चारण स्वर के समान होते थे। संस्कृत में आकर ये कदाचित् 'लि', 'रि' और 'री' जैसे उच्चरित होने लगीं अर्थात् उच्चारण व्यंजन के समीप पहुँच गया।
3. ऐ, औ के उच्चारण वैदिक भाषा के आइ, आउ थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में ये अई, अउ हो गए।
4. ए, ओ का उच्चारण वैदिक में अइ, अउ था अर्थात् ये संयुक्त स्वर थे, किन्तु संस्कृत में मूल स्वर हो गए।
5. लेखन में ळ, ळह अक्षर समाप्त हो गए और इनके स्थान पर ड, ढ प्रयुक्त होने लगे।
6. वैदिक तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) और स् दन्तमूलीय थे किन्तु संस्कृत में ये दन्त्य हो गए।
7. वैदिक ह्रस्व और दीर्घ ग्वुं ध्वनि संस्कृत भाषा में नहीं रही।

2. स्वराघात :

वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वराघात था। इसके विरुद्ध लौकिक संस्कृत में संगीतात्मक स्वराघात के स्थान पर बलात्मक स्वराघात का प्रयोग होने लगा। उदात्त आदि स्वर नहीं रहे।

3. क्रियारूप :

क्रियारूपों की ये विशेषताएँ हैं –

1. वैदिक भाषा में लट् लकार था किन्तु संस्कृत में इसका लोप हो गया।
2. वैदिक भाषा में लिट् वर्तमान में अर्थ में था किंतु संस्कृत में वह परोक्षभूत के लिए आता है।
3. क्रियारूपों में वैकल्पिक रूपों की न्यूनता हो गई।

4. समासगत विशेषताएँ :

1. वैदिक भाषा में लम्बे–लम्बे समासों की प्रवृत्ति नहीं थी किन्तु संस्कृत में गद्यविकास के कारण लम्बे–लम्बे समास बनने लगे।
2. वैदिक भाषा में केवल चार समास थे–तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुब्रीहि और द्वन्द्व किंतु लौकिक संस्कृत में दो समास बढ़ गए, द्विगु और अव्ययीभाव समास।

5. उपसर्ग :

मूल भारोपीय भाषा एवं वैदिक भाषा में उपसर्ग वाक्य में कहीं भी आ सकते थे किंतु लौकिक संस्कृत में उपसर्ग का क्रिया एवं शब्द रूप के साथ प्रारंभ में जुड़ना अनिवार्य कर दिया गया। जैसे वैदिक भाषा में –''यथा प्र देव वरुण व्रतम मिनीमसि'' यहाँ प्र उपसर्ग 'मिनीमसि' के पूर्व आना चाहिये था, किन्तु इन दोनों के बीच में तीन शब्द आए हैं।

6. प्रत्यय :

1. वैदिक भाषा में पूर्णकालिक कृदन्त प्रत्यय के अनेक रूप थे। जैसे–त्वा.....त्वाय, त्वीन, त्वी, य। लौकिक संस्कृत में इसके दो रूप रह गए हैं–त्वा और य। जैसे गत्वा, अधिगत्य आदि।
2. इसी प्रकार वैदिक भाषा में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में अनेक हैं–तुम्, से, असे, अध्यै आदि, परन्तु लौकिक संस्कृत में एकमात्रा तुम् प्रत्यय का ही प्रयोग होता है।

7. शब्द रूप :

1. वैदिक संस्कृत में विजातीय शब्द मिल चुके थे, विशेषतः द्रविड और आस्ट्रिक भाषा से, किंतु लौकिक संस्कृत में उनकी संख्या बहुत बढ़ गई। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार द्रविड़, आस्ट्रिक, यूनानी, रोमन, अरबी, ईरानी, तुर्की, चीनी आदि भाषाओं के लगभग दो हजार शब्द लौकिक संस्कृत में आ गए। जैसे मर्कट, मीन, अर्क, कानन आदि द्रविड़ भाषा से। ताम्बूल, श्रृंगार आदि शब्द आस्ट्रिक भाषा से। यवन, यवनिका, सुरंग आदि यूनानी भाषा से। हिन्दू, मिहिर (सूर्य) बादाम आदि ईरानी भाषा से। चीनाशुंक आदि चीनी भाषा से।
2. अनेक वैदिक शब्दों के अर्थ लौकिक संस्कृत में बदल गए। जैसे अद्रि, (वैदिक अर्थ बादल, संस्कृत में पर्वत) असुर (वै, शक्तिशाली, संस्कृत दैत्य), आयु (वै, धन सं, उम्र), घृणा (वै.दया, सं. नफरत) पर्वत (वै. मेघ, सं. पहाड़) विप्र (वै. बुद्धिमान, सं. ब्राह्मण) आदि।
3. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग बन्द हो गया जिससे शब्दकोश में भी अन्तर आ गया। जैसे मूर (मूढ़), अमूर (बुद्धिमान), अमीवा (व्याधि), रपस (चोट) दृशीक (सुन्दर) आदि।

सारांश

(क) समानताएँ

1. वैदिक और लौकिक संस्कृत दोनों आकृतिमूलक की दृष्टि से श्लिष्ट योगात्मक हैं।
2. दोनों में सभी शब्द धातु से ही बने हैं।
3. प्रायः सभी प्रत्यय समान हैं।
4. धातुओं के गण प्रायः एक समान हैं।
5. संधि और समास की विधि दोनों से है।
6. दोनों में 3 लिंग, 3 वचन और 3 पुरुष हैं।
7. दोनों में पदों का क्रम निश्चित नहीं है जबकि हिन्दी में है।
8. दोनों में कारक और विभक्तियाँ हैं।

(ख) विषमताएँ

	वैदिक संस्कृत	लौकिक संस्कृत
1.	ध्वनियों में ळ, ळह	ये ध्वनियाँ नहीं रहीं

		जिह्वामूलीय और उपध्मानीय है।
2.	लृ स्वर का प्रयोग था।	लृ स्वर लुप्त प्राय है।
3.	उदात्त आदि स्वर थे।	इनका प्रयोग नहीं रहा।
4.	संगीतात्मक है।	बलात्मक है।
5.	ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत थे।	प्लुतः प्रायः लुप्त हो गया।
6.	शब्द और धातु रूपों में विविधता थी।	यह विविधता नहीं रही।
7.	लट् लकार था।	यह संस्कृत में नहीं रहा।
8.	कृदन्त प्रत्ययों में विविधता थी।	यह विविधता नहीं रही।
9.	संधिनियम ऐच्छिक थे।	संधि नियम आवश्यक हो गया।
10.	उपसर्गों का प्रयोग स्वतंत्रा था।	यह स्वतंत्राता नहीं रही।
11.	शब्दों का अर्थ संस्कृत से भिन्न है।	शब्दों के अर्थ में अन्तर हो गया।
12.	छन्दपूर्ति के लिए स्वरभक्ति का प्रयोग स्वर होता था।	स्वर भक्ति का प्रयोग नहीं रहा। जैसे–स्वर् से, सुवर्

13. तर, तम, प्रत्यय संज्ञा शब्दों से भी जुड़ते थे। ये प्रत्यय विशेषण शब्दों में ही जुड़ते हैं।

1.1.2.3 स्वयं जांच अभ्यास

1. वैदिक संस्कृत से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

1.1.3 सारांश :

आर्य जाति को लेकर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं, कुछ कहते हैं, ये बाहर से आए थे, कुछ कहते हैं कि ये मध्यएशिया के निवासी थे। अब कुछ विद्वान् यह सिद्ध करने में जुटे हैं कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आए, बल्कि हिन्दुकुश के आसपास ही रहते थे। भारत में आर्यभाषा का प्रारंभ 1500 ई. पू. के आसपास माना है। आधुनिक काल की भाषाओं में से हिन्दी को सभी भारतीय भाषाओं की बहन माना जाता है। प्राचीन आर्यभाषाओं के दो रूप बौद्धिक और लौकिक संस्कृत स्वीकार किए जाते हैं। इनकी विभिन्न विशेषताएँ हैं और साम्य विषम्य दोनों मौजूद हैं।

1.1.4 प्रश्नावली :

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के दो रूप कौन से हैं।

2. वैदिक भाषा के अंतर्गत क्रियागत विशेषताएं बताएँ।
3. प्राचीन आर्यभाषा के तीन रूप या बोलियाँ लिखें।
4. लौकिक संस्कृत के बारे में टिप्पणी करें।
5. लौकिक संस्कृत में क्रिया रूप के बारे में लिखें।

1.1.5 सहायक पुस्तकें :

1. डॉ. राजिन्द्र कौर अनेजा – हिन्दी भाषा, मानक स्वरूप
2. धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी भाषा का इतिहास
3. भोला नाथ तिवारी – भाषा विज्ञान
4. राम छबीला त्रिपाठी – भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा।

पाठ संख्या–1.2

लेखिका–डॉ0 सुरिन्द्रपाल कौर

मध्यकालीन आर्य भाषाएँ

इकाई की रूपरेखा :

1.2.0 उद्देश्य

1.2.1 प्रस्तावना

1.2.2 मध्यकालीन आर्यभाषाएँ

1.2.2.1 पालि (प्रथम प्राकृत)

1.2.2.2 प्राकृत (द्वितीय प्राकृत)

1.2.2.2.1 प्राकृत के भेद – शौरसेनी प्राकृत, पैशची प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत, अर्धमागधी, मागधी

1.2.2.3 अपभ्रंश (तृतीय प्राकृत)

1.2.2.4 स्वयं जांच अभ्यास

1.2.3 सारांश

1.2.4 प्रश्नावली

1.2.5 सहायक पुस्तकें

1.2.0 उद्देश्य :

हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास पेपर के दूसरे अध्याय में आप सब मध्यकालीन आर्यभाषाओं से संबंधित विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पाएंगे। इसके अलावा भी आप जान पाएंगे कि–

– मध्यकालीन आर्यभाषाओं को कितने भागों में बांटा जाता है?

– पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के क्षेत्रा के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।

– उपर्युक्त भाषाओं की विशेषताओं के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।

1.2.1 प्रस्तावना :

भाषा सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है। जिस प्रकार व्यक्ति को बिना प्रयास पैतृक सम्पत्ति मिल जाती है और वह धनवान् बन जाता है, भाषा उस प्रकार की पैतृक सम्पत्ति नहीं है। अगर पिता दस भाषाओं का ज्ञाता है, तो आवश्यक नहीं कि पुत्रा को उन सभी भाषाओं का भी ज्ञान स्वयं ही हो जाए। भाषा को मनुष्य सीखता है,

उसका सर्जन करता है। यह सामाजिक वस्तु है क्योंकि उसकी उत्पत्ति समाज में होती है। भाषा को अनुकरण द्वारा सीखा जा सकता है, जिसके अंतर्गत सामाजिक व्यवहार भी महत्वपूर्ण बन जाता है।

1.2.2 मध्यकालीन आर्यभाषाएँ (500 इस्वी पूर्व से 1000 इस्वी तक) :

मध्यकालीन आर्यभाषाओं को तीन भागों में बाँटा गया है –

1. पालि (500 ई. पू. से 100 ई. तक)
   इसमें अभिलेखी प्राकृत भी आती है।
2. प्राकृत (100 ई. या 1 ईस्वी से 500 ई. तक)
3. अपभ्रंश (500 ई. से 1000 ई. तक)

1.2.2.1 पालि (प्रथम प्राकृत) :

पालि भाषा को प्रथम प्राकृत भी कहते हैं। प्राकृत का अर्थ विवादास्पद है। विचार करने से ज्ञात होता है कि ईसा प्रायः परिवर्तन हो जाता है। यही जनभाषा संस्कृत से विकसित होते हुए प्राकृतों के रूप में प्रसिद्ध हुई। प्राकृत भाषाओं में संस्कृत शब्दों का कहीं तो विकृतिकरण हो गया है और कहीं सरलीकरण। जन व्यवहृत भाषा का साहित्यिक रूप 'संस्कृत' कहा गया और बोलचाल की संस्कृत का नाम प्राकृत। इसी आधार पर प्राकृत के सभी वैयाकरणों ने संस्कृत को आधार मानकर ध्वनिपरिवर्तन आदि समझाए हैं। नाट्य–शास्त्रा के रचयिता भरतमुनि (चतुर्थशती ई. पू.) ने भी यही मत प्रतिपादित किया है कि संस्कृत भाषा के शब्दों का ही विकृत एवं परिवर्तित रूप प्राकृत भाषा है–

विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानाऽवस्थाऽन्तरात्मकम्।

पालि की व्युत्पत्ति :

'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। 'पालि' शब्द के पुराने प्रयोग 'भाषा' के अर्थ में नहीं मिलते। इसका प्राचीनतम प्रयोग चौथी शताब्दी में लंका में लिखित ग्रन्थ 'दीपवंस' में हुआ है। वहाँ इसका अर्थ 'बुद्धवचन' है। बाद में प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ने भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। तब से लेकर काफी बाद तक ''पालि'' शब्द का प्रयोग पालि साहित्य में हुआ है, किन्तु कभी भी भाषा के अर्थ में नहीं। भाषा के अर्थ में पालि का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के लोगों द्वारा हुआ है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति 'पाल्लि' (ग्रामीण भाषा होने के कारण), अथवा पाटलि (पाटलिपुत्रा अर्थात मगध की भाषा), पंक्ति (बुद्धवचन की पंक्ति) अथवा प्राकृत से पाइल और पाइल से पालि शब्द सिद्ध किया है। पालि को पालने वाली (अर्थात् बौद्ध साहित्य की रक्षा करने वाली) भाषा भी माना गया है। उक्त मतों की समीक्षा से ज्ञात होता है कि इनमें से कुछ मत केवल बौद्धिक व्यायाम है। जैसे–पंक्ति, पाठ, प्राकृत, पाटलि आदि। सबसे प्रामाणिक व्युत्पत्ति भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा दी गई है। प्रायः बहुत से भारतीय विद्वान् इससे सहमत हैं। इनके अनुसार 'पालि' का सम्बन्ध 'परियाय' से है जिसे संस्कृत में पर्याय कहते हैं। इनकी विकास परम्परा इस प्रकार है–

परियाय – पलियाय – पालियाय – पालि।

पालि भाषा का क्षेत्रा :

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, ''अपने मूल में पालि मध्यप्रदेश की भाषा है। मथुरा और उज्जैन के बीच प्रदेश को इसका क्षेत्रा माना है। भले ही इस पर मागधी बोली का प्रभाव पड़ा है। कोई बोली जब साहित्य में स्थान पाती है तो उसमें अपने साथ की कई बोलियों के तत्व आ ही जाते हैं।'' डॉ. हरदेव बाहरी ने लिखा है कि अपने समय में पालि का प्रचार न केवल उत्तरी भारत में था अपितु वर्मा, लंका, तिब्बत, चीन आदि में भी हुआ था। इन देशों की भाषाओं पर पालि का गहरा प्रभाव पड़ा है।

पालि का साहित्य :

पालि भाषा को हम बौद्ध प्राकृत भी कह सकते हैं, क्योंकि सारी साहित्यिक संपत्ति भगवान बुद्ध अथवा उनके शिष्य परम्परा के बौद्ध भिक्षुओं द्वारा दी गई है। अन्य प्रकार का साहित्य होगा अवश्य परंतु वह काल कवलित हो गया है। परम्परागत रूप से पालि साहित्य को पिटक और अनुपिटक दो वर्गों में बाँटते हैं जिनमें जातक, धम्मपद (धर्मपद), बुद्ध घोष की अट्टकथा तथा महावंश आदि प्रमुख हैं। पालि साहित्य का रचनाकाल 483 ई. पू. से लेकर आधुनिककाल तक लगभग ढाई हजार वर्षों से फैला हुआ है।

पालि की भाषायी विशेषताएँ :

1. ध्वनियाँ :

पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन के अनुसार 41 ध्वनियाँ थीं।

पालि में निम्नलिखित स्वर मिलते हैं –

ह्रस्व – अ, इ, उ, एँ, आँ

दीर्घ – आ, ई, उ, ए, ओ

स्वर विषयक मुख्य बातें –

1. स्वरों में ह्रस्व एँ, आँ दो नए विकसित हो गए।
2. ऐ, ओ, और ऋ, ॠ, ऌ, लट् लुप्त हो गये।
3. स्वरों के साथ का विसर्ग लुप्त हो गया जैसे–देवः से देवो, धेनुः से धेनु आदि।

व्यंजन :

1. व्यंजनों में श और ष दोनों का उच्चारण स हो गया। जैसे–तेषु से तेसु, कोष से कोस।
2. शब्द के अंत में आने वाले व्यंजन का भी लोप हो गया। जैसे–भगवान् का भगवा आदि। पालि में – व्यंजनात शब्द है ही नहीं।
3. पालि में वैदिक ळ सुरक्षित है जैसे–पीडा से पीळा।

संयुक्त व्यंजन :

संयुक्त व्यंजन लगभग समाप्त हो गया, उनकी जगह द्वित्व व्यंजन कर दिए गए। जैसे–ज्येष्ठ से जेठ, ग्राम

से गाम। त्य का च्च, घ का ज्ज आदि। स्वरभक्ति है, जैसे मर्यादा से मरियादा आदि।

फुटकर परिवर्तन

कुछ अन्य परिवर्तन इस प्रकार हैं।

1. आदि स्वर का लोप – अलंकार से लंकार आदि।
2. स्वरों का समानीकरण – इषु से उसु आदि।
3. स्वर ह्रस्वीकरण – उताहो से उदाहु आदि।

इसी प्रकार अन्य बहुत से परिवर्तन हुए हैं जिनका यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं है।

2. सन्धि :

पालि में संधि के नियम अत्यंत सरल हैं। स्वर संधियों में जैसे तस्स+इद= तस्सेदं वाम+उरू=वामोरू।

व्यंजन संधि के नियम भी शिथिल हैं। किसी शब्द के अन्त में (हलन्त) व्यंजन होता ही नहीं।

विसर्ग संधि नहीं है क्योंकि विसर्ग इस भाषा में है ही नहीं।

3. स्वराघात :

टर्नर के अनुसार पालि भाषा में वैदिक संस्कृत की भांति ही संगीतात्मक एवं बलात्मक, दोनों स्वराघात था। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार पालि में मुख्यतः बलात्मक स्वराघात ही था, यद्यपि संगीतात्मक के भी कुछ अवशेष हैं।

4. व्याकरण या रूपविचार :

पालि में सरलीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह सरलीकरण समीकरण, सादृश्य आदि के कारण हुए हैं। यथा–

नाम :

1. पालि में द्विवचन नहीं है। सब नाम (संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण) एक वचन और बहुवचन में रूपान्तरित हो गए।
2. आठ कारकों के स्थान पर छह कारक रह गए। सम्प्रदान और सम्बन्ध कारक एक हो गए हैं। कर्ता और सम्बोधन में कोई विशेष अंतर नहीं रह गया।
3. पालि में ऋकारान्त जैसे पितृ, मातृ संज्ञाएं नहीं रहीं।
4. नामों में तीन लिंग हैं – पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग।

सर्वनाम :

सर्वनाम इस प्रकार हैं – मयं (मैं), तुवं (तू), अम्ह (हम), तुम्ह (तुम) आदि।

विशेषण :

पालि के संख्यावाचक विशेषण सब प्राचीन आर्यभाषा से व्युत्पन्न हुए हैं जैसे–एक, द्वि, ति, या तीणि, चतुर, पंच, सत्त, अट्ठ, नव, दस आदि।

क्रिया :

पालि में दो वचन (द्विवचन का लोप), तीन पुरुष, आठ लकार हैं। पालि में सभी रूप परस्मैपद में ढल गए हैं। आत्मनेपद और उभयपद नहीं हैं।

अव्यय :

पालि में संस्कृत के सारे उपसर्ग मिलते हैं। कुछ में ध्वनिगत परिवर्तन जरूर हुए हैं। जैसे–संस्कृत में प्रति उपसर्ग पालि में पति हो गया है।

क्रिया विशेषण भी प्रायः संस्कृत के ही है उनमें ध्वनिपरिवर्तन अवश्य हुए हैं जैसे–किंसु (कैसे), कुत्थ (कहाँ), तत्थ (वहाँ) आदि।

पालि में योजक शब्द हैं–च, चा, एवं, पर, यदि आदि। विस्मयादिबोधक शब्द हैं–भो, रे, है, वे, हा, हे।

5. बोलियाँ :

संस्कृत के समान ही पालि में भी तीन बोलियाँ या भाषा रूप हैं– 1. पश्चिमोत्तरी दक्षिणी 2. मध्यवर्ती तथा 3. पूर्वी।

धम्मपद की कुछ पक्तियाँ उद्धृत कर संस्कृत, पालि और हिन्दी में उनकी समानता देखी जा सकती है–

1. संस्कृत – सर्वा दिशः सत्पुरुषः प्रवाति।

   पालि – सब्बा दिसा सुप्पुरिसो पवाति।

   हिन्दी – सब दिशाओं में सत्पुरुष (सुगंध) बहाता है।

2. संस्कृत – न भजेत् पापात्ति मित्राणि।

   पालि – न भजे पाप के मित्ते।

   हिन्दी – न सेवर करें पापी मित्राों को।

   संस्कृत की तरह पालि भी संयोगात्मक भाषा है।

अभिलेखी या शिलालेखी प्राकृत :

मौर्य साम्राज्य के विस्तार के साथ पालि भाषा का भी विस्तार हुआ। सम्राट अशोक शासन और धर्म सम्बन्धी अपने आदेश भारत के विभिन्न भागों में पहुँचाने के लिए शिलाओं, स्तम्भों और भित्तियों पर खुदवाये। ये अभिलेख उड़ीसा, बिहार, आन्ध्र, करनाटक, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पंजाब आदि के कई केन्द्रों में पाए गए हैं। हिन्दी के विकास की पूर्व स्थितियों के अंतर्गत इनका कोई विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि वे अभिलेख मूलतः पूर्वी पालि में लिखे गए और प्रादेशिक भाषाओं में इनका प्रयोग किया गया।

प्राप्त सामग्री के आधार पर अभिलेखी प्राकृत की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. स्वर एवं व्यंजन पालि के समान हैं। कुछ शिलालेखों में श, ष, स तीनों मिलते हैं।
2. कुछ शिलालेखों में ण, ा व्यंजन नहीं है।
3. हलन्त शब्द प्रायः अकारान्त हो गए हैं।
4. क्रियारूप पालि के समान हैं। आत्मनेपदी नहीं है। पालि के सभी प्रत्यय मिलते हैं।
5. रूप रचना में कोई विशेष अन्तर नहीं है।
6. तीन लिंग हैं। द्विवचन नहीं है।
7. संघोषीकरण, अघोषीकरण और मूर्धन्यीकरण के उदाहरण अधिक मिलने लगे हैं।

1.2.2.2 प्राकृत (द्वितीय प्राकृत) (100 इस्वी से 500 इस्वी) :

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्यभाषा को साधारणतया संस्कृत कह दिया जाता है, उसी प्रकार मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के लिए 'प्राकृत' शब्द का व्यवहार किया जाता है। 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति प्रकृति अर्थात् जनसाधारण से है, अतः प्राकृत का अर्थ हुआ जनसाधारण की भाषा। हेमचन्द्र, मार्कण्डेय, सिंहदेव आदि आचार्यों के अनुसार मूलभाषा अर्थात् 'संस्कृत से उत्पन्न प्राकृत है–''प्रकृति, संस्कृतम्, तद्भव प्राकृतम्' संस्कृत जनभाषा थी ही। वही विकसित–विकृत होते–होते प्राकृत प्रसिद्ध हुई।

प्राकृत को साहित्यिक प्राकृत भी कहते हैं। वह अब उस भाषा के लिए रूढ़ हो गया है जो पहली शताब्दी से पाँचवी –छठी शताब्दी तक प्रमुख रूप से साहित्यिक भाषा रही है। साहित्यिक भाषा होने के कारण ही यह संस्कृत की अनुचरी बन गई, क्योंकि इस भाषा ने संस्कृत के शब्दों और आवश्यक रूपों को अपनाया है। इसी कारण प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से मानी गई है।

प्राकृत साहित्य :

प्राकृत भाषा में प्रचुर साहित्य मिलता है – धार्मिक भी और लौकिक भी। बौद्ध और जैन साहित्य प्रमुख रूप से मागधी, अर्धमागधी, शौरसैनी और महाराष्ट्री प्राकृत में प्राप्त हैं–'गौडवहो' (गौडवध) और 'सेतुबंध' जैसे महाकाव्य तथा '–गाहासत्तसई' (गाथा सप्तशती) और 'वज्जालग्ग' जैसे खंडकाव्य प्राकृत की बहुमूल्य संपत्ति है। इस साहित्य के व्याकरण ग्रंथ वररुचि कृत 'प्राकृत प्रकाश' और आचार्य हेमचन्द्र कृत 'प्राकृत व्याकरण हैं किन्तु व्याकरणों ने प्राकृत भाषा में वैसी ही जकड़न ला दी है, जैसी पाणिनी, कात्यायन आदि वैयाकरणों ने संस्कृत में। इसलिये यह भाषा शिक्षित वर्ग की भाषा बन गई।

2.2.2.1 प्राकृत के भेद :

प्राकृत व्याकरण के सबसे प्राचीन वैयाकरण वररुचि ने चार प्राकृतों का नाम लिया है– 1. शौरसैनी 2. महाराष्ट्री 3. मागधी और 4. पैशाची। मागधी के दो रूप हो गए हैं–मागधी और अर्धमागधी। इस प्रकार ये पाँच प्राकृत हैं।

एक वैयाकरण ने 27 और दूसरे ने 42 प्राकृतें गिना दी हैं। परन्तु इन सबका साहित्य उपलब्ध नहीं है। अतः

मुख्य पाँच प्राकृतों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

1. शौरसेनी प्राकृत :

शौरसेनी प्राकृत मथुरा के आसपास की भाषा है, जिसे शूरसेन कहते थे। पश्चिमी हिन्दी की बोलियों–ब्रजभाषा, कौरवी, कन्नौजी, हरियाणवी, राजस्थानी आदि का विकास इसी से हुआ है। नाटकों में सर्वाधिक प्रयोग इसी भाषा का हुआ है। नाटकों में इसका व्यवहार स्त्री–पात्रों, मध्यमवर्ग के लोगों और विदूषकों से कराया गया है। प्राकृत का गद्य शौरसेनी में मिलता है। यह भाषा संस्कृत से अधिक निकट है। भास, कालिदास आदि के नाटकों में गद्य शौरसेनी में ही है। राजशेखर कृत 'कर्पूरमंजरी' का समस्त गद्य भाग इसी प्राकृत में है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। यह निम्न एवं मध्यमकोटि के पात्रों और स्त्रियों की भाषा थी। अपनी सरलता, सरसता आदि के कारण यह अधिक लोक प्रिय है।

प्रमुख विशेषताएँ :

1. प्रथमा एक वचन में कारक चिन्ह ''ओ'' हो गया है जैसे–पुत्राः का पुत्तो, बहुवचन में पुत्ता।
2. दो स्वरों के मध्य आने वाले 'त' को 'द' और 'थ' को 'ध' हो गया है जैसे संस्कृत के गच्छति को गच्छदि, कथं को कधं।
3. दो स्वरों के मध्य की द्, ध् ध्वनियाँ ज्यों के त्यों हैं जैसे–जलदः का जलदो।
4. मध्यगत महाप्राण ध्वनियाँ ख, घ, थ, ध, फ, भ के स्थान पर ह हो जाता है। जैसे मुख का मुंह, मेघ का मेह, वधु का बहू, अभिनव का अभिणव।
5. न को ण हो जाता है जैसे–भागिनी को बहिणी।
6. मध्यगत प को व हो जाता है। दीप को दीव।
7. क्ष को क्ख हो जाता है। इक्षु को इक्खु।
8. केवल परस्मैपद धातुएँ हैं।
9. लिट्, लङ्, लुङ्, विधि लिंग प्रायः समाप्त हो गए।
10. द्विवचन नहीं रहा।

2. अर्धमागधी :

अर्धमागधी काशी–कोसल प्रदेश की भाषा थी। इसमें मागधी की प्रवृत्तियाँ पर्याप्त मात्राा में मिलती हैं इसलिये इसे अर्धमागधी कहा गया। इसमें भरपूर जैन साहित्य प्राप्त है। जैसे पालि बुद्ध भगवान के उपदेशों का संकलन है, वैसे ही अर्धमागी भगवान महावीर के उपदेशों का संग्रह है। इनके अतिरिक्त पचास एक ग्रन्थ और भी है। इन ग्रन्थों में गद्य में मागधी और पद्य में शौरसेनी व्याप्त है। साहित्यिक प्राकृतों में यह सबसे पुरानी भाषा है। जैन इसे आदि भाषा कहते हैं। पूर्वी हिन्दी की बोलियों अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी का विकास इसी से हुआ है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में इसे चेट, राजपुत्रा और सेठों की भाषा बताया है। इसका प्राचीनतम प्रयोग अश्वघोष के नाटकों में मिलता है।

प्रमुख विशेषताएँ :

1. दन्त्य को मूर्धन्य हो जाता है। स्थित को ढिय।
2. श् तथा ष् के स्थान पर स् हो जाता है। श्रावग को सावग, वर्ष को वास।
3. चवर्ग के स्थान पर कहीं–कहीं तवर्ग मिलता है जैसे–चिकित्सा को तेइच्छा।
4. य को ज हो जाता है। यौवन से जोव्वण।
5. स्वरों के बीच स्पर्श का लोप होने पर 'य' श्रुति मिलती है। जैसे–सागर में सायर।
6. क का ग जो जाता है–आकर से आगर।
7. अः का कहीं ओ और कहीं ए हो जाता है।
8. संयुक्त व्यंजन सरल हुआ है। जैसे–वर्ष से वरस और उससे वास।
9. रूपों की विविधता अधिक है क्योंकि कई बोलियों के तत्व इसमें समाहित हैं।
10. त्व प्रत्यय को त्ता और त्य को च्चा हो गया है।

इसे जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी भी कहा गया है।

3. मागधी :

मागधी मूलतः मगध की भाषा थी। संस्कृत नाटकों में निम्नश्रेणी के पात्रा मागधी बोलते थे। भरत के नाट्य शास्त्रा के अनुसार यह अन्तःपुर के नौकर, अश्वपालक आदि की भाषा थी। मार्कण्डेय के अनुसर भिक्षु, राक्षस, चेट आदि मागधी बोलते थे। इसका प्राचीनतम प्रयोग अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। कालिदास के नाटकों में तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में मागधी का प्रयोग मिलता है। लंका में पालि को मागधी कहते हैं। इसके तीन प्रकार हैं–शाकारी, चाण्डाली और शबरी। इसमें कोई विशेष साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। मागधी से ही बिहारी हिन्दी की बोलियाँ भोजपुरी, मैथिली, बंगला, उड़िया और असमी का विकास हुआ है।

प्रमुख विशेषताएँ :

1. मागधी में 'र' ध्वनि का सर्वथा अभाव है। र को ल हो जाता है। यथा–राजा से लाजा, समर से शमल।
2. मागधी में स, ष को श हो जाता है। यथा–समर से शमल, शुष्क से शुश्क।
3. ज का य हो जाता है। यथा–जानाति से याणादि।
4. च्छ को श्च हो जाता है। यथा–गच्छ से गश्च।
5. क्ष को श्क हो जाता है। पक्ष से पश्क।
6. ष्ट को स्ट हो जाता है–कष्ट से कस्ट।
7. प्रथमा एक वचन में विसर्ग को 'ए' हो जाता है। देवः से देवे।

इन पंच प्राकृतों के अलावा कुछ और प्राकृत भाषा है : जिनका कोई साहित्यिक महत्व नहीं है।

6. केकय प्राकृत – इसका क्षेत्रा प्राचीन केकय प्रदेश था, जहाँ आज लहंदा बोली जाती है।

7. टक्क – इसका क्षेत्रा पंजाब है।

8. खस – इसका क्षेत्रा हिमाचल प्रदेश है। खस अपभ्रंश से पहाड़ी बोलियों का विकास हुआ है।

9. व्राचड – इसका क्षेत्रा प्राचीन सिंध क्षेत्रा था। व्राचड अपभ्रंश से सिंधी का विकास हुआ है।

1.2.2.3 अपभ्रंश (तृतीय प्राकृत) :

महाभाष्यकार पतंजलि ने भ्रष्ट एवं अशुद्ध शब्दों को अपभ्रंश कहा है। वाग्भट्ट और आचार्य हेमचन्द्र ने अपभ्रंश को ग्राम भाषा कहा है। कुछ विद्वानों ने इसे देशी भाषा कहा है। दण्डी ने इसे आभीर आदि की भाषा कहा है। समय के साथ इस भाषा का विस्तार हुआ और यह साहित्य की भाषा और देशभाषा बन गई। 7वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक इसकी विशेष उन्नति हुई। हिन्दी भाषा के विकास में अपभ्रंश का विशेष योगदान है।

कालिदास के नाटकों में कुछ पात्राों के कथन अपभ्रंश में है। आठवीं शताब्दी में सिद्धों की रचनाओं में प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश मिलती है। शिलालेखों में इसका प्रयोग पाया जाता है। अपभ्रंश में विशाल साहित्य है। इसमें चरित काव्य, रासोकाव्य, खण्डकाव्य और स्फुट कविताएँ मिलती हैं। इसका साहित्य अधिकांशतः पश्चिम में रचा गया है। इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ–महापुराण, नेमिरास, गौतम रास आदि हैं।

अपभ्रंश की बोलियाँ :

मार्कण्डेय ने प्राकृत सर्वस्व में तीन अपभ्रंश माने हैं–नागर, उपनागर और व्राचड। नागर गुजरात की अपभ्रंश, व्राचड सिन्ध की और उपनागर दोनों के मध्य की मानी है। यों 'प्राकृत सर्वस्व' में मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के 27 भेद भी स्वीकार किए हैं किन्तु विद्वानों का मत है कि पाँच प्राकृतों से पाँच अपभ्रंशों का विकास हुआ। मुख्य अपभ्रंश शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, व्राचड मानी जा सकती है। डॉ. चटर्जी ने खस अपभ्रंश का भी उल्लेख किया है जिसका स्थन पर्वतीय क्षेत्राों में माना है। यों याकोबी ने अपभ्रंश के चार भेद, तगारे ने तीन भेद तथा नामवरसिंह ने दो भेद किए हैं, किन्तु ये भेद साहित्य में प्रयुक्त भाषा के आधार पर किए गए हैं।

अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताएँ

अपभ्रंश की सामान्य विशेषताओं में निम्नलिखित उल्लेखनीय है–

1. स्वर –

स्वर की प्रमुख विशेषताएँ हैं –

1. प्राकृत में प्रयुक्त स्वर ध्वनियाँ अपभ्रंश में भी थीं।
2. ऐ, औ नहीं मिलते।
3. ऋ लिखा तो जाता था, किन्तु इसका उच्चारण 'रि' हो गया था।
4. स्वरों के अनुनासिक रूप प्रयुक्त होने लगा था। यथा–देवं, जाउ, घिए आदि।

5. कई शब्दों में अकारण अनुनासिकता आ गई थी। यथा–पक्षि से पंखि, अश्रु से अंशु।

6. अपभ्रंश उकार बहुला भाषा थी। यथा–मनु, अंगु, कारणु, चलु, चलतु आदि।

7. स्वर लाकर व्यंजन संयोग को सरल किया गया। यथा–सिंह से सीह, कस्स से कासु, सीता से सीय।

8. कई शब्दों में स्वर लोप हो गया। यथा–अहं से हउं, अरण्य से रण्ण।

9. संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलात्मक स्वर हो गया।

2. व्यंजन :

1. प्राकृत में प्रयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ अपभ्रंश में भी थीं।

2. वर्णमाला में ङ, ा, न्, श् और ष ध्वनियाँ नहीं है।

3. दन्त्य व्यंजन मूर्धन्य होने लगे थे।

4. म का वँ (कमल से कँवल), व का ब (वचन से बअण), क्ष का च्छ (पक्षी से पच्छी), य का ज (युगल से जुगल) आदि रूपों में ध्वनि परिवर्तन हुए।

5. संयुक्त अक्षरों में र का लोप हो जाता है। यथा–प्रिय से पिउ, चन्द्र से चन्द।

6. त्य का च्च हो जाता है। यथा–सत्य से सच्च।

3. व्याकरण :

संज्ञा – कारकों में रूप बहुत कम हो गए। संस्कृत में एक शब्द के 24 रूप होते थे, प्राकृत में उनकी संख्या लगभग 12 रह गई। अपभ्रंश में लगभग 6 रूप रह गए। तीन कारक समूह हैं–1. कर्ता, कर्म, संबोधन 2. करण, अधिकरण। 3. सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध।

सर्वनाम – सर्वनामों के रूपों में कमी आ गई।

विशेषण – विशेषणों के रूपान्तर संस्कृत की तरह संज्ञा के अनुरूप लिंग वचन के अनुसार होते हैं। सार्वनामिक विशेषण है–अइस (ऐसा) जइस, तइस।

संख्या वाचक विशेषण हैं – एक या एग, दु, तिण्ण, चउ

क्रिया :

1. तिङन्त रूप कम रह गए।

2. नपुंसक लिंग समाप्त हो गया।

3. द्विवचन का पूर्णतया अभाव है।

4. अपभ्रंश के धातुरूप हैं–कह, बोल्ल, उट्ठ।

5. धातुरूपों में लट्, लोट् और लृट ही शेष रहे।

4. शब्दावली :

अपभ्रंश के शब्द भंडार की प्रमुख विशेषताएँ हैं –

1. तद्भव शब्दों का अनुपात अपभ्रंश में सबसे अधिक हैं। यथा–जिभा (जिह्वा) तलाउ (तालाब), पंछी (पक्षी), पुत्त (पुत्रा) बरिस (वर्ष)।
2. देशज शब्दों की भरमार है। यथा–सुपड़ा (झोपड़ा) मुग्ग (मूंग), छइल्ल (छैला)।
3. क्रियाओं में भी बहुत से देशज हैं।
4. अरबी–फारसी के शब्द भी मिल गए हैं। यथा–आलमाल, कोंचा ताला (कुंजी ताला), खुश, तहसील, रूमाल, सुलताण आदि।

अपभ्रंश भाषा के कतिपय उदाहरण –

1. कहउं संगहबिहत्थ (कहता हूँ जोड़कर हाथ)
2. जं जसु रुच्चई तं तसु (जो जिसको भाता है वह उसका है)
3. कि भरेवि पंचमु गाइज्जई (क्या मरण पर पंचम गाया जाता है)
4. अंधा अंध कढ़ाव तिय वैण्ण वि कूव पडेइ
   (अंधों को अंधा निकाले तो दोनों कुएँ में पड़े)
5. ते मग्गिउ वरु णरवई अभीहु (उसने माँगा वर नरपति से अभय का)

अवहट्ट या अवहट्ठ

अपभ्रंश के परवर्ती या परिवर्तित रूप को अवहट्ट कहा गया है। यह अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है। ग्यारहवीं से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अपभ्रंश के कवियों ने अपनी भाषा को अवहट्ट कहा है। इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता ज्योतिरीश्वर ठाकुर हैं। 'प्राकृत पैंगलम' की भाषा को उसके टीकाकार वंशीधर ने अवहट्ट माना है। सन्देशरासक के रचयिता अब्दुररहमान ने भी अवहट्ट भाषा का उल्लेख किया है। मिथिला के विद्यापति ने अपनी कृति 'कीर्तिलता' की भाषा को अवहट्ट कहा है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर अवहट्ट को परवर्ती भाषा माना है और बताया है कि निश्चय रूप से अवहट्ट में ध्वनिगत, रूपगत और शब्द सम्बन्धी बहुत से तत्व ऐसे हैं जो इस पूर्ववर्ती भाषा अपभ्रंश से अलग करते हैं।

अवहट्ट काल सन् 900 से 1100 ई. तक निश्चित किया गया है। इसके बाद पुरानी हिन्दी का प्रारंभ होता है। अवहट्ट भाषा की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं–कीर्तिलता, वर्णरत्नाकर, प्राकृत, पैंगलम, नाथ और सिद्ध साहित्य, बाहुबलि रास आदि।

प्रमुख विशेषताएँ :

1. अपभ्रंश की ही ध्वनियाँ अवहट्ट में भी है। केवल दो नए स्वर आ गए–ऐ और औ।

2. स्वरगुच्छों में संधि या संकोच इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। यथा–भंडारिअ अपभ्रंश से अवहट्ट में भंडारी, सन्नआर से सुनार, उपआस से उपास, मउर से मोर।

3. अकारण अनुनासिकता चल पड़ी थी। जैसे–आँखि (आँख), गींव (ग्रीवा), पाँव (पाद), बंभण (ब्राह्मण)।

4. व्यंजन व्यवस्था अपभ्रंश जैसी थी। ड, ढ, दो नए व्यंजन आ गए।

5. लिंग दो हैं और वचन भी दो ही हैं।

6. कर्ता में 'ने' का विकास हुआ।

7. सर्वनामों के रूप बदल गए। जैसे–मैं, हौं, अम्हे।

8. क्रियारूपों में आधुनिक बोलियों का प्रभाव पड़ा है।

9. संयुक्त क्रियाओं की संख्या बढ़ रही थी।

10. अवहट्ट में तद्भव शब्द सर्वाधिक है। देशज, विदेशी और तत्सम शब्दों की संख्या भी अपभ्रंश की अपेक्षा भरपूर हैं।

11. वाक्य में शब्द क्रम निश्चित हो गया। कर्ता, कर्म और अन्त में क्रिया।

1.2.2.4 स्वयं जांच अभ्यास

1. अपभ्रंश की उत्पत्ति पर टिप्पणी करें।

.....

.....

.....

1.2.3 सारांश :

पालि भाषा को हम बौद्ध प्राकृत भी कह सकते हैं, क्योंकि सारी साहित्यिक संपत्ति भगवान् बुद्ध अथवा उनके शिष्य परंपरा के बौद्ध भिक्षुओं द्वारा दी गई है। स्वर एवं व्यंजन पालि के समान हैं। कुछ शिलालेख में श, ष, स तीनों मिलते हैं। 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति प्रकृति अर्थात् जनसाधारण से हैं, अतः प्राकृत का अर्थ हुआ जनसाधारण की भाषा। प्राकृतों में व्यंजनांत शब्द प्रायः नहीं हैं। तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। विदेशी शब्द भी अधिक आ गए हैं। महाभाष्यकार पतंजलि ने भ्रष्ट एवं अशुद्ध शब्दों को 'अपभ्रंश कहा है। समय के साथ इस भाषा का विस्तार हुआ और यह साहित्य की भाषा और देशभाषा बन गई। अपभ्रंश में संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलात्मक स्वर हो गया है। प्राकृत में प्रयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ अपभ्रंश में भी थीं। क्रियाओं में भी बहुत से देशज हैं।

1.2.4 प्रश्नावली :

1. मध्यकालीन आर्य भाषाओं को कितने भागों में बांटा जाता है?

2. शौरसेनी प्राकृत पर टिप्पणी करें।

3. पालि भाषा के बारे में संक्षेप में लिखें।

4. अपभ्रंश के बारे में आप क्या जानते हैं। संक्षिप्त टिप्पणी करें।

5. मागधी भाषा पर टिप्पणी करें।

1.2.5 सहायक पुस्तकें :

1. हिन्दी भाषा मानक स्वरूप – राजिन्द्र कौर अनेजा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास – धीरेन्द्र वर्मा
3. भाषा विज्ञान – भोलानाथ तिवारी
4. भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा – राम छबीला त्रिपाठी

पाठ संख्या–1.3

लेखिका–डॉ0 सुरिन्द्रपाल कौर

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

इकाई की रूपरेखा :

1.3.0 उद्देश्य

1.3.1 प्रस्तावना

1.3.2 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

1.3.3 भाषाओं का वर्गीकरण

1.3.3.1 स्वयं जांच अभ्यास

1.3.4 सारांश

1.3.5 प्रश्नावली

1.3.6 सहायक पुस्तकें

1.3.0 उद्देश्य :

'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ' शीर्षक पाठ में विद्यार्थियों को आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से संबंधित विस्तृत जानकारी के साथ–साथ विभिन्न प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा किया भाषा का वर्गीकरण भी पढ़ने को मिलेगा। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण तहत पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों द्वारा अपने विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए हैं।

1.3.1 प्रस्तावना :

भारतीय आर्यभाषाओं का आरंभ कब से होता है, यह कहना बहुत कठिन है। इन भाषाओं को बहुत बाद में साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहृत होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। बहुत समय तक अपभ्रंश में साहित्य रचना होती रही। 8वीं, 9वीं शताब्दी के सिद्धों की भाषा में हमें अपभ्रंश से निकलती हुई हिन्दी स्पष्टतः दिखाई देती है। आधुनिक आर्यभाषाओं में ईसा की सोलहवीं सदी से साहित्यिक रचनाएँ मिलने लगती हैं। वैसे पन्द्रहवीं शताब्दी तक भारतीय आर्यभाषा आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थी। आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् तेरहवीं शताब्दी के आरंभ से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अभ्युदय के समय पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व तक का काल संक्राति काल था, जिसमें भारतीय आर्यभाषा धीरे–धीरे अपभ्रंश की स्थितियों को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थी। 'कीर्तिलता', 'चर्यापद', 'ज्ञानेश्वरी', प्राकृत पैंगलम्, 'उक्ति व्यक्ति प्रकरणम्' आदि रचनाओं में संक्रान्ति कालीन भाषा मिलती है।

1.3.2 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ :

आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास मध्यकालीन अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है। पाँच प्राकृतों से पाँच अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ है, इन पाँच अपभ्रंशों से एवं व्राचड तथा खस से सिन्धी, पंजाबी, हिन्दी (ब्रजभाषा खड़ी बोली आदि), राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पूर्वी हिन्दी (अवधी इत्यादि), बिहारी, बंगला, उड़िया भाषाओं का जन्म हुआ है। सिंधी, पंजाबी में आर्यभाषा का मध्यकालीन स्वरूप बहुत कुछ सुरक्षित है, परंतु प्राच्यभाषा, बिहारी–बंगला में मध्यकालीन आर्यभाषा का स्वरूप बहुत बदल गया है। गुजराती प्राचीन व्याकरण को अपनाए हुए हैं और हिन्दी भी वर्णों के उच्चारण आदि में संस्कृत से अधिक दूर नहीं है।

इस प्रकार सात अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास माना जाता है।

	अपभ्रंश		**विकसित आधुनिक भाषाएँ**
1.	शौरसेनी	1.	पश्चिमी हिन्दी
		2.	
		3.	गुजराती
2.	महाराष्ट्री	4.	मराठी
3.	मागधी	5.	बिहारी
		6.	बंगला या बंगाली
		7.	उड़िया
		8.	असमी
4.	अर्धमागधी	9.	पूर्वी हिन्दी
5.	पैशाची	10.	लहँदा
6.	ब्राचड	11.	सिन्धी
		12.	पंजाबी
7.	खस	13.	पहाड़ी

हिन्दी भाषा का उद्‌भव अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी तथा अर्धमागधी रूपों से हुआ है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का संक्षिप्त परिचय

1. पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसकी पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं–

1. खड़ी बोली 2. ब्रजभाषा 3. बाँगरू 4. कन्नौजी और 5. बुन्देली।

पश्चिमी हिन्दी मध्यप्रदेश की भाषा है। आजकल मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जाने वाली बोली

पश्चिमी हिन्दी की बोली खड़ी बोली से ही वर्तमान साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। पश्चिमी हिन्दी की पाँच बोलियों के सम्बन्ध में आगे विचार किया जायेगा। इसका उपयुक्त नाम नागरी हिन्दी है। भारत के संविधान में हिन्दी को राजभाषा के पद पर आसीन किया गया है। प्राचीन युग में मध्यप्रदेश की भाषा संस्कृत, पालि, शौरसेनी अपभ्रंश का जो स्थान था, आज हिन्दी ने भी राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के रूप में वही स्थान ग्रहण किया है।

2. राजस्थानी

राजस्थानी का विकास शौरसेनी के नागर अपभ्रंश से हुआ है। इसका प्रमुख क्षेत्रा राजस्थान है। पिंगल के अनुकरण पर राजस्थानी में डिंगल काव्य की रचना हुई है। इसकी लिपि नागरी और महाजनी है। इसकी चार प्रमुख बोलियाँ हैं–1. मारवाड़ी 2. जयपुरी 3. मालवी और 4. मेवाती।

1. **मारवाड़ी –** यह पश्चिमी राजस्थान की बोली है। इसका क्षेत्रा है–जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि।
2. **जयपुरी –** यह राजस्थान के पूर्वी भाग में बोली जाती है। इसका क्षेत्रा है–जयपुर, कोटा, बूँदी।
3. **मेवाती –** यह अलवर और हरियाणा में गुडगांव जिले के कुछ भागों में बोली जाती है। इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है।

3. गुजराती

शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से गुजराती का विकास हुआ है। यह गुजरात प्रान्त की भाषा है। इसका राजस्थानी से बहुत साम्य है। गुजरात का सम्बन्ध गुर्जर जाति के लोगों से है। ये लोग मूलतः शक थे और 5 वीं सदी के लगभग भारत में आए थे। यहाँ अरब, पारसी, तुर्क आदि बड़ी संख्या में बाहर से आकर बसे हैं। अतः विदेशी तत्व भाषा में अधिक हैं। गुजराती की लिपि अपनी है जो नागरी से बहुत मिलती–जुलती है। यह लिपि शिरोरेखा विहीन है। इसमें उच्चकोटि का साहित्य मिलता है। 13वीं सदी से अब तक इसमें साहित्य रचना हो रही है। इसके प्रमुख साहित्यकार विनयचन्द्र सूरि (13वीं), राजशेखर (14वीं), नरसी मेहता (15वीं सदी) आदि हैं।

4. मराठी

इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। यह महाराष्ट्र की भाषा है। मराठी साहित्य का प्रारंभ 12वीं सदी में माना जाता है। मराठी के आदि कवि मुकुन्दर्राय हैं जिनका प्रधान ग्रन्थ 'विवेक सिन्धु' है।

मराठी की प्रमुख चार बोलियाँ हैं–

1. देशी – यह दक्षिण भाग में बोली जाती हैं।
2. कोंकणी – यह समुद्री किनारे की बोली है।
3. नागपुरी – यह नागपुर के आस–पास बोली जाती है।
4. बरारी – यह बरार की बोली है।

पूना की बोली टकसाली भाषा मानी जाती है। मराठी की लिपि देवनागरी है।

5. बिहारी

इसका जन्म मागधी अपभ्रंश से हुआ है। वस्तुतः बिहारी कोई भाषा नहीं है। यह बिहार प्रान्त में बोली जाने वाली भाषाओं के समूह का नाम है। इसकी प्रमुख तीन उपभाषाएँ हैं–

1. भोजपुरी – भोजपुरी का आधार भोजपुर गाँव है। यह शाहाबाद जिले में था। अब शाहाबाद जिले का नाम ही भोजपुर हो गया है। इस भाषा का क्षेत्रा बहुत व्यापक है। इसमें बिहार और उत्तरप्रदेश के कई जिले हैं। उ.प्र. के वाराणसी, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, मिर्जापुर, गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, आजमगढ़ और बिहार के भोजपुर, राँची, सारन, चम्पारन आदि। राँची अब झारखण्ड प्रान्त में है। इसका स्वतंत्रा साहित्य नहीं है। कबीर, धर्मदास, भीखा साहब आदि के पदों में इसका प्रयोग हुआ है। इसका लोक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

2. मैथिली – यह मिथिला क्षेत्रा की भाषा है। इसका क्षेत्रा है–दरभंगा, पूर्णिया, सहरसा, मुजफ्फरनगर का पूर्वीभाग। इसमें पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसके प्रसिद्ध कवि विद्यापति हैं। लोकगीत मधुर हैं।

3. मगही – यह पटना, गया, हजारी, बाग एवं भागलपुर के पूर्वी भागों में बोली जाती है। इसमें लोकगीत हैं, उल्लेखनीय साहित्य नहीं है।

6. बंगाली

यह बंगाल प्रान्त की भाषा है। बंगाली का सम्बन्ध बंगाल के प्राचीन नाम 'वंग' से है। यह शब्द कदाचित् आस्ट्रिक भाषा का है। 'वंग' में आल प्रत्यय लगाकर बंगाल बना है। मागधी अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। इसकी साहित्यिक भाषा को 'साधु भाषा' कहते हैं। इसमें संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है। हिन्दी से बंगाली ने बहुत से शब्द लिए हैं और हिन्दी को भी उपन्यास, गल्प, रसगुल्ला, रूपसि आदि शब्द दिए हैं। यह भाषा साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। प्राचीन बंगाली साहित्य में 'कृतिवासी रामायण,' काशीरामदास का 'महाभारत', चंडीदास की 'पदावली', केशवदास का 'क्षेमानन्द काव्य' आदि प्रमुख हैं। आधुनिक लेखकों में बंकिमचन्द्र, माइकेल मधुसूदन, शरतचन्द्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि प्रमुख हैं। बंगला की लिपि अलग है। यह प्राचीन देवनागरी से विकसित है।

7. उड़िया

यह उड़ीसा प्रान्त की भाषा है। उड़िया भाषी उड़िया को ओड़िया कहते हैं। इसका जन्म मागधी अपभ्रंश से हुआ है। उड़ीसा का प्राचीन नाम कलिंग या उत्कल मिलता है। वर्तमान में उड़िया भाषी अपने देश को उड़ीसा न कहकर ओडिशा कहते हैं। इस भाषा पर बंगाली और तेलुगु का अधिक प्रभाव है। संस्कृत भाषा के शब्द प्रचुर मात्राा में है। उड़िया साहित्य को आदिकाल (11वीं से 1550 तक) मध्यकाल (1550 से 1850), आधुनिक काल (1850 से अब तक), इन तीन कालों में बाँटा गया है। इसके प्रमुख ग्रन्थ 'महाभारत' तथा 'विलंका रामायण' है। उडिया की अपनी लिपि है तो ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित है।

8. असमी

यह असम प्रान्त की भाषा है। असम का प्राचीन नाम 'प्राग्ज्योतिष' था। उसके बाद इसे कामरूप कहने लगे।

यह मागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है। इस भाषा के प्रथम कवि हेम सरस्वती हैं जिन्होंने 'प्रह्लाद चरित्रा' लिखा है। प्राचीन असमी साहित्यकारों में पीताम्बर, शंकरदेव, माधवदेव तथा सूर्यस्वरी बलदेव आदि प्रमुख हैं। असमी लिपि मैथिली और बंगाली की तरह नागरी के पूर्वी रूप से विकसित हुई है। भौगोलिक कारणों से यह बंगला भाषा से बहुत प्रभावित है।

9. पूर्वी हिन्दी

यह अर्धमागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है। इसकी तीन बोलियाँ हैं–1. अवधी 2. बघेली, और 3. छत्तीसगढ़ी। इन तीनों की लिपि देवनागरी है।

1. अवधी – यह लखनऊ, फैजाबाद, सीतापुर, रायबरेली, गोंडा, बहराइज आदि जिलों में बोली जाती है। कानपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर आदि के भी कुछ भागों में बोली जाती है। इसमें जायसी का पद्मावत और तुलसी का रामचरित मानस अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें पर्याप्त समृद्ध साहित्य है।

2. बघेली – यह बघेलखण्ड की बोली है। इसका प्रमुख केन्द्र रीवाँ है।

3. छत्तीसगढ़ी – यह छत्तीसगढ़ में बोली जाती है। इसका विस्तार रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, जगदलपुर आदि जिलों तक है। इसमें केवल कुछ लोकगीत मिलते हैं।

10. लहँदा

लहँदा पश्चिमी पंजाब की भाषा है। यह क्षेत्रा अब पाकिस्तान में है। 'लहँदा' शब्द का शाब्दिक अर्थ है पश्चिम या सूर्यास्त। इसका विकास पैशाची अपभ्रंश से हुआ है। इसके अन्य नाम है–जटकी, मुलतानी, डिलाही, उच्ची। लहँदा पर सिन्धी तथा कश्मीरी का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सिक्ख धर्म की जनमसाखी के अतिरिक्त लहँदा में केवल लोक साहित्य ही है। लहँदा बोलने वाले मुसलमान ही अधिक हैं। इसी कारण इसके लिए फारसी लिपि का प्रयोग होता है। हिन्दू लोग 'लंडा' नामक लिपि का प्रयोग करते हैं। अब लहँदा क्षेत्रा में उर्दू का ही बोलबाला है।

11. सिन्धी

मूलतः सिन्धी सिन्ध प्रदेश की ही भाषा है। अब सिन्ध में सिन्धी बोलने वाले मुसलमान ही रह गए हैं। इसके बोलने वाले पंजाब, दिल्ली, मुम्बई आदि में बस गए हैं। सिन्धी की प्राचीनतम पुस्तक 'महाभारत' कही जाती है जिसकी रचना 1000 ई. से कुछ पहले हुई थी। सिन्धी साहित्य का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शाहजो विशालो' है। इसके प्रमुख कवि अब्दुल, करीम, शाह लतीफ, सचल और सामी आदि है। इसकी प्रमुख पाँच बोलियाँ हैं–बिचौली, सिरैकी, लाड़ी, थरेली, कच्छी। इनमें बिचौली मुख्य है। यह साहित्यिक भाषा हो गई है। सिन्धी के लिए फारसी लिपि का प्रयोग होता है। भारत में सिन्धी अब नागरी लिपि में लिखी जाने लगी है। इसकी अपनी प्राचीन लिपि लंडा है।

12. पंजाबी

'पंजाबी' शब्द फारसी का है। इसका अर्थ है–पाँच नदियों (पंज+आब) का देश। पाँच नदियाँ हैं–सतलुज, रावी, व्यास, चेनाव और झेलम। पंजाब प्रदेश की भाषा होने के कारण इसका नाम पंजाबी है। सिक्खों के

कारण इसे सिक्खी और लिपि के आधार पर इसे गुरमुखी भी कहते रहे हैं। अमीर खुसरों ने इसे लाहौरी कहा है। इसके प्रथम कवि बाबा फरीद गंज शंकर है। इसके प्रसिद्ध साहित्यकार गुरु नानक, गुरु अर्जुनदेव, गुरुदास तथा हीर राँझा के लेखक वारिश शा हैं। पंजाबी की लिपि गुरुमुखी है। पाकिस्तान क्षेत्रा में उर्दू में लिखी जाती है।

13. पहाड़ी

इसका विकास खस अपभ्रंश से हुआ है। कुछ विद्वान् शौरसेनी से इसका विकस मानते हैं। यह हिमालय के निचले भाग में बोली जाती है। इसकी लिपि नागरी है। इसके तीन भाषा वर्ग है– 1. पश्चिमी पहाड़ी 2. मध्य पहाड़ी 3. पूर्वी पहाड़ी। पश्चिमी पहाड़ी की लगभग 30 बोलियाँ हैं। मध्य पहाड़ी के दो भाग हैं–गढ़वाली और कुमायूँ। इन भाषाओं का लोक साहित्य सम्पन्न है। नेपाली पूर्वी पहाड़ी में है। नेपाली नेपाल की राजभाषा है। इसका साहित्य नवीन है। डॉ0 टर्नर ने नेपाल पर महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'नेपाली शब्दकोश' लिखा है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की प्रमुख विशेषताएँ

1. इन भाषाओं में प्रमुखतः वही ध्वनियाँ हैं जो अपभ्रंश में थीं।

2. ध्वनि विषयक प्रमुख विशेषताएँ –

(क) पंजाबी आदि में उदासीन स्वर 'अ', अवधी आदि में जपित या अघोष स्वर गुजराती में मर्मस्वर का विकास हो गया है।

(ख) ऋ का लिखित रूप तो ऋ है, किन्तु उच्चरित रूप उत्तरीभारत में 'रि', गुजराती आदि में 'रु' है।

(ग) उष्म वर्णों में लिखने में तो स, श, ष, तीनों का प्रयोग किन्तु उच्चारण में स, श दो ही हैं, 'ष' भी श रूप में उच्चरित होता है।

(घ) संयुक्त व्यंजन 'झ' के शुद्ध उच्चारण का लोप हो गया है। उसके स्थान पर ज्यँ, ग्यँ या द्यं का उच्चारण होता है।

(ङ) आधुनिक भाषाओं में नुक्ता वाले क, ख, ग, ज, फ ध्वनियाँ भाषाओं में आ गई हैं, पर इनका शुद्ध उच्चारण नहीं होता।

3. अंतिम दीर्घ स्वर प्रायः ह्रस्व हो गए हैं और अंतिम 'अ' स्वर भी प्रायः लुप्त हो गया है। यथा–राम्, अब् आदि।

4. आधुनिक भाषाओं में बलाघात स्वर मुख्य हो गया है। वाक्य के स्तर पर संगीतात्मक भी है।

5. संस्कृत, पालि आदि की तुलना में रूप कम हो गए हैं। संस्कृत में 24, प्राकृत में 12, अपभ्रंश में 6 और आधुनिक भाषाओं में दो, तीन या चार रूप हैं। क्रिया रूप भी कम हो गए हैं।

6. संस्कृत, पालि आदि भाषाएँ योगात्मक थीं, किन्तु आधुनिक भाषाएँ आयोगात्मक या वियोगात्मक हो गई हैं।

7. संस्कृत में वचन तीन थे। प्राकृत, अपभ्रंश में दो और अब आधुनिक काल में भी दो ही हैं किन्तु प्रवृत्ति एक वचन की है।

8. आ.भा.आ. में केवल गुजराती, मराठी में तीन लिंग हैं शेष में दो लिंग हैं–पु. स्त्री।

9. आधुनिक भाषाओं में 8-9 हजार पश्तो, तुर्की, फारसी आदि से शब्द आ गए हैं। तत्सम शब्दों का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है।

1.3.4 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण पर प्रकाश डालने वाले विद्वान हैं–

1. हार्नले 2. जार्ज ग्रियर्सन 3. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी 4. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा तथा 5. डॉ. भोलानाथ तिवारी।

डॉ. हार्नले का मत

डॉ. हार्नले ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को 4 वर्गों में रखा है–

1. पूर्वी गौडियन

(क) पूर्वी हिन्दी (बिहारी सहित) (ख) बंगला (ग) असमी (घ) उड़िया

2. पश्चिमी गौडियन

(क) पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी भी)(ख) गुजराती (ग) सिन्धी (घ) पंजाबी

3. उत्तरी गौडियन

(क) गढ़वाली (ख) नेपाली आदि पहाड़ी बोलियाँ

4. दक्षिणी गौडियन

मराठी

हार्नले के वर्गीकरण का आधार उनके द्वारा किया गया आर्य भाषाओं का अध्ययन है। उनकी धारण है कि भारत में आर्य कम से कम दो बार आए। पहले आर्य आधुनिक पंजाब में आकर बसे थे। कुछ दिन बाद दूसरे आर्यों का हमला हुआ। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि 'जैसे कहीं कील ठोकने पर कील छेद बनाकर बैठ जाती है और उस बने छेद के आधार पर जो चीज रहती है, चारों ओर चली जाती है, उसी प्रकार नवागत आर्य उत्तर से आकर प्राचीन आर्यों के स्थान पर जम गए और पूर्वागत (अर्थात् जो पहले आए थे) पूरब, दक्षिण, पश्चिम में फैल गए। इस प्रकार नवागत आर्य भीतरी कहे जा सकते हैं और पूर्वागत बाहरी।'

डॉ. ग्रियर्सन का वर्गीकरण

डॉ. हार्नले के उपर्युक्त वर्गीकरण का डॉ. ग्रियर्सन ने समर्थन किया है। यद्यपि आर्यों के आक्रमण आदि के सम्बन्ध में ग्रियर्सन का हार्नले से मौलिक मतभेद है तथापि जहाँ तक भीतरी तथा बाहरी भाषाओं से सम्बन्धा है, दोनों विद्वानों का मत एक है। नवागत आर्यों को बाहरी मानते हुए उन्होंने भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है–

1. बाहरी उपशाखा

(क) पश्चिम मोत्तरी समुदाय – 1. लहँदा 2. सिन्धी

(ख) दक्षिणी समुदाय – 3. मराठी

(ग) पूर्वी समुदाय – 4. उड़िया 5. बंगला 6. असमियाँ तथा 7. बिहारी

2. मध्यवर्गी उपशाखा

मध्यवर्ती अर्थात बीच का समूह – 8. पूर्वी हिन्दी

3. भीतरी उपशाखा

(क) केन्द्रीय समुदाय – 9. पश्चिमी हिन्दी 10. पंजाबी 11. गुजराती 12. भीली 13. खानदेशी 14. राजस्थानी

(ख) पहाड़ी समुदाय – 15. पूर्वी पहाड़ी 16. मध्य पहाड़ी 17. पश्चिमी पहाड़ी

नवागत आर्यों ने मध्यदेश को ही अपना निवास स्थान बनाया था और यहीं पर यज्ञपरायण संस्कृति की नींव डाली थी। गुजराती की भाषा को ग्रियर्सन ने भीतरी उपशाखा में स्थान दिया है इसका कारण यह है कि मध्य देश स्थित मथुरा वालों ने इस प्रदेश पर आधिपत्य किया था। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से बाहर होते हुए भी गुजरात भाषा की दृष्टि से भीतरी समूह के अंतर्गत है।

ग्रियर्सन का यह वर्गीकरण ध्वनि, क्रियारूप तथा शब्द समूह इन बातों पर आधारित हैं।

1. ध्वनितत्व

ध्वनितत्व की दृष्टि से बाहरी और भीतरी उपशाखाओं में पर्याप्त अन्तर है। सबसे पहले उष्म वर्ण श, ष और स को लिया जा सकता है। भीतरी उप शाखा में ये दन्त्य 'स' के रूप में उच्चरित होते हैं। मागधी में यह 'स' 'श' में परिणत हो गया है। बंगला और मराठी में 'स' आज भी 'श' रूप में ही उच्चरित होता है किन्तु पूर्वी बंगला तथा असम (आसाम) प्रदेश में यह 'ख' हो गया है तथा कश्मीर में यह 'ह' हो गया है।

2. क्रियारूप

बाहरी और भीतरी क्रियारूपों में भी भिन्नता है। क्रियाओं की भिन्नता के कारण ही ग्रियर्सन ने बाहरी और भीतरी उपशाखाओं को अलग रखा है। भीतरी उपशाखा की भाषाओं तथा बोलियों का व्याकरण बाहरी उपशाखा की भाषाओं तथा बोलियों के व्याकरण से अपेक्षाकृत संक्षिप्त तथा सरल है।

3. शब्दरूप

संज्ञा के शब्दरूपों में भी इन उपशाखाओं में स्पष्ट अन्तर है। भीतरी उपशाखा की भाषाएँ तथा बोलियाँ वस्तुतः विश्लेषणात्मक अवस्था में है। इनमें प्राचीन कारकों के रूप विलुप्त हो चुके हैं। बाहरी उपशाखा की भाषाएं विकास की परम्परा में एक कदम आगे बढ़ गई है। पहले ये संस्कृत की भांति संयोगात्मक थीं और अब वियोगावस्था की ओर उन्मुख है। यथा–हिन्दी में –राम की पुस्तक, किन्तु बंगला में 'रामेर बोई' कहा जाता है।

प्रसिद्ध भाषा शास्त्राी डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के इस वर्गीकरण की आलोचना अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरिजन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑव बंगाली लैंगवेज' में किया है।

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का मत

डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण को दोषपूर्ण मानते हुए अपना वर्गीकरण इस प्रकार से प्रस्तुत किया है–

1. उदीच्य (उत्तरी) – 1. सिन्धी 2. लहँदा 3. पंजाबी
2. प्रतीच्य (पश्चिमी) – 4. गुजराती 5. राजस्थानी
3. मध्यदेशीय – 6. पश्चिमी हिन्दी
4. प्राच्य (पूर्वी) – 7. पूर्वी हिन्दी 8. बिहारी 9. उड़िया 10. असमिया 11. बंगला
5. दाक्षिणात्य (दक्षिणी) – 12. मराठी

कश्मीर की कश्मीरी भाषा की उत्पत्ति डॉ. चटर्जी दरद शाखा से मानते हैं। इसी प्रकार पहाड़ी भाषाओं – पूर्वी पहाड़ी (नेपाली), मध्यपहाड़ी (गढ़वाली तथा कुमायूँनी) तथा पश्चिमी पहाड़ी (चमेआली, सिरमौरी आदि) की उत्पत्ति वे खस अपभ्रंश और दरदीय भाषा से मानते हैं।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण के आधार पर ही अपना वर्गीकरण दिया है–

1. उदीच्य (उत्तरी) – 1. सिन्धी 2. लहंदा 3. पंजाबी
2. प्रतीच्य (पश्चिमी वर्ग) – 4. गुजराती
3. मध्यदेशीय – 5. राजस्थानी 6. पश्चिमी हिन्दी 7. पूर्वी हिन्दी 8. बिहारी
4. प्राच्य (पूर्वी वर्ग) – 9. उड़िया 10. असमी 11. बंगाली
5. दाक्षिणात्य (दक्षिणी) – 12. मराठी

इस वर्गीकरण में केवल यही एक विशेषता है कि मध्यवर्ग में पश्चिमी हिन्दी के साथ–साथ राजस्थानी, पूर्वी हिन्दी और बिहारी को भी ले लिया गया है।

डॉ. सीताराम चतुर्वेदी

डॉ. सीताराम चतुर्वेदी ने सम्बन्धसूचक परसर्ग के आधार पर यह वर्गीकरण किया है।

1. का वर्ग – हिन्दी, पहाड़ी, जयपुरी
2. दा वर्ग – पंजाबी, लहँदा
3. जो वर्ग – सिन्धी, कच्छी
4. नो वर्ग – गुजराती
5. एरै वर्ग – बंगाली, उड़िया, असमी

यथार्थतः यह कोई वर्गीकरण नहीं है। ऐसे तो 'ल' या 'स' से 'श' ध्वनियों के आधार पर भी वर्ग बनाए जा सकते हैं।

डॉ. भोला नाथ तिवारी

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषाओं की मूलभूत विशेषताओं के आधार पर इन भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है–

1. मध्यवर्ती – 1. पूर्वी हिन्दी 2. पश्चिमी हिन्दी
2. पूर्वी – 3. बिहारी 4. बंगला 5. उड़िया 6. असमिया
3. दक्षिणी – 7. मराठी
4. पश्चिमी – 8. सिन्धी 9. गुजराती 10. राजस्थानी
5. उत्तरी – 11. लहँदा 12. पंजाबी 13. पहाड़ी

वस्तुतः वर्गीकरण का उद्देश्य वर्ग विशेष की भाषाओं की प्रवृत्तियों में एक रूपता बताना है। इस उद्देश्य की पूर्ति किसी भी वर्गीकरण से नहीं होती। इनसे कोई भी भाषा–वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं कि ''प्रवृत्तियों के आधार पर इन भाषाओं में इतना वैभिन्य सा साम्य है कि सभी बातों का ठीक तरह से विचार करते हुए वर्गीकरण हो ही नहीं सकता।''

1.3.3.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. पश्चिमी हिन्दी का विकास किस अपभ्रंश से हुआ?

.....

.....

.....

1.3.4 सारांश :

भारोपीय भाषा परिवार विश्व का सबसे बड़ा भाषा परिवार है। इसका भौगोलिक क्षेत्रा अत्यन्त विस्तृत है। इसमें भाषाओं तथा बोलियों की संख्या बहुत बड़ी है और साथ ही इस भाषाओं तथा बोलियों को बोलने वालों की मात्राा भी बहुत अधिक है। इस भाषा परिवार में आने वाली भाषाओं में उच्चकोटि का साहित्य रचा गया है, जो अपनी गुणवत्ता एवं परिणाम में अन्य भाषा परिवारों की भाषाओं में बहुत आगे है। इस परिवार की भाषाओं में स्वर परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन होना है और इसमें समास–रचना की अद्भुत क्षमता पाई जाती है।

1.3.5 प्रश्नावली :

1. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के नाम दें।
2. टिप्पणी करें – 1. पश्चिमी हिन्दी 2. बिहारी
   3. असमी 4. पंजाबी

3. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण को लेकर अग्रलिखित विद्वानों के मत स्पष्ट करें –

1. डॉ. ग्रियर्सन 2. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा 3. डॉ. भोलानाथ तिवारी

1.3.6 सहायक पुस्तकें :

1. हिन्दी भाषा : इतिहास और स्वरूप – डॉ. राजमणि शर्मा
2. हिन्दी भाषा – कैलाश चंद्र भाटिया
3. हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास – उदयनारायण तिवारी
4. हिन्दी भाषा का इतिहास – भोलानाथ तिवारी

पाठ संख्या–1.4 लेखिका–डॉ0 कुलदीप कौर

हिन्दी की उपभाषाएँ एवं बोलियां

रूपरेखा

1.4.0 उद्देश्य
1.4.1 प्रस्तावना
1.4.2 हिन्दी उपभाषाएं और बोलियाँ
1.4.3 खड़ी बोली, ब्रजभाषा और अवधी की विशेषताएँ
    1.4.3.1 स्वयं जाच अभ्यास
1.4.4 सारांश
1.4.5 प्रश्नावली
1.4.6 सहायक पुस्तकें

1.4.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत पाठ में आप हिन्दी की उपभाषाओं और बोलियों के विकास की प्रक्रिया और उनके विभिन्न क्षेत्राों का अध्ययन करेंगे क्योंकि आधुनिक हिन्दी भाषा का अस्तित्व इन सभी भाषाओं के मिश्रण से ही सम्पूर्णता को प्राप्त करता है।

1.4.1 भूमिका

भाषा की उत्पत्ति, उसके स्वरूप और निरंतर विकास की कहानी भिन्न–भिन्न पड़ावों से गुजरती हुई अत्यन्त रोचक बन पड़ी है। समय–समय पर विद्वानों ने भाषा की उत्पत्ति पर विभिन्न मत दिए हैं, तथापि अभी किसी अंतिम निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सका। यह स्वीकार करना अधिक तर्कसंगत रहेगा कि भाषा मनुष्यकृत और क्रमशः विकास का ही परिणाम है। समय और आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ–साथ भाषा में परिवर्तन द्रष्टव्य होता रहा है। भारत में प्रमुख रूप आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। उत्तर भारत की भाषाओं का संबंध आर्य परिवार तथा दक्षिण भारत की भाषाओं का संबंध द्रविड़ परिवार से माना जाता है। उत्तर भारत की आर्य भाषाओं में संस्कृत सबसे प्राचीन भाषा है, इसी की उत्तराधिकारिणी के रूप में हिन्दी को देखा जाता है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार, 'हिन्दी' जिस भाषा–धारा के विशिष्ट दैशिक और कालिक रूप का नाम है, भारत में उसका प्राचीनतम रूप संस्कृत है। इसी संस्कृत का काल 1500 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व तक स्वीकार किया गया है। इस समय में संस्कृत ही बोलचाल की भाषा भी थी। संस्कृत मुख्यतः दो रूपों में विद्यमान रही। एक वैदिक संस्कृत, जिसमें सभी प्रकार का वैदिक साहित्य लिखा गया। दूसरा रूप लौकिक संस्कृत का रहा जिसके अंतर्गत रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ आदि तथा अश्वघोष, कालिदास, माघ आदि जैसे रचनाकारों की रचनाएँ मुख्यत सम्मिलित हैं। इस युग के अंत तक परिनिष्ठित भाषा तो एक ही

थी, परन्तु इसमें क्षेत्रीय बोलियाँ विकसित होने लगी थीं। जिन्हें पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी और पूर्वी नाम से जाना जाता है।

1.4.2 हिन्दी की उपभाषाएं एवं बोलियाँ

संस्कृतकालीन बोलचाल की भाषा अपने निरंतर विकसित रूप के कारण परिवर्तन के विभिन्न पड़ावों से गुजरी परिणामस्वरूप इसे 'पालि' भाषा के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। इसका समय 500 ई0 पूर्व से पहली ई0 पूर्व स्वीकार किया जाता है। कुछ विद्वान इसे बौद्ध धर्म की भाषा भी कहते हैं। इस युग में क्षेत्रीय बोलियों की संख्या बढ़कर चार हो गई–पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी और दक्षिणी। पहली ईस्वी तक आते–आते यह बोलचाल की भाषा और भी परिवर्तित रूप में द्रष्टव्य होने लगी। यहीं से इसको 'प्राकृत' नाम से पुकारा जाने लगा जोकि 500 ई. तक स्वीकारी गई। इस युग में कई क्षेत्रीय बोलियां आरम्भ हो चुकी थीं, जिनमें मुख्य शोरसेनी, पैशाची, ब्रहाड़, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी आदि थीं। 500 ई. के आस–पास ही 'प्राकृत' से अपभ्रंश का विकास हुआ जोकि 1000 ई0 तक स्वीकार किया जाता है। डॉ0 नामवर सिंह अपने ग्रंथ 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' मे अपभ्रंश का जन्मकाल 700 ई0 स्वीकार करते हैं। परन्तु भोलानाथ तिवारी के मतानुसार अपभ्रंश का जन्म 500 ई. के आस–पास हुआ है। आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास इसी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। हिन्दी भाषा का उद्‌भव अपभ्रंश के शौरसेनी, अर्द्ध मागधी और मागधी रूपों से हुआ है। उत्तर भारत में अपभ्रंश के कई क्षेत्रीय रूपान्तरण प्रचलित थे, जिनसे आधुनिक आर्य भाषाएं विकसित हुई, इनका विवरण निम्न से है।

	अपभ्रंश का क्षेत्रीय रूप	विकसित होने वाली आर्य भाषाएं
1.	शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती।
2.	पैशाची अपभ्रंश	पंजाबी, लहंदा।
3.	ब्राचड़ अपभ्रंश	सिन्धी।
4.	महाराष्ट्री अपभ्रंश	मराठी।
5.	अर्द्ध मागधी अपभ्रंश	पूर्वी हिन्दी।
6.	मागधी अपभ्रंश	बिहारी, उड़िया, बंगला, असमिया।

यह ध्यातव्य है कि अपभ्रंश काल के मध्य भाग के आस–पास ही हिन्दी के आरम्भिक स्वरूप द्रष्टव्य होने लगे थे। साहित्य के इतिहासकार हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं सदी के मध्य से स्वीकार करते हैं। जबकि भाषा के विद्धानों ने हिन्दी का आभास भले ही इस समय के आस–पास माना हैं परन्तु हिन्दी के वास्तविक अस्तित्व में आने का समय दसवीं सदी से ही स्वीकार करना उचित रहेगा। हिन्दी भाषा की पांच उपभाषाएं और 17 बोलियां स्वीकार की गई जोकि निम्न प्रकार से हैं :–

भाषा		उपभाषाएं		बोलियाँ
हिन्दी	1.	पश्चिमी हिन्दी	1.	खड़ी बोली (कौरवी) 2. ब्रजभाषा 3. हरियाणवी 4. बुन्देली 5. कन्नौजी।
	2.	पूर्वी हिन्दी	1.	अवधी 2. बघेली 3. छत्तीसगढ़ी
	3.	राजस्थानी	1.	पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी)

		2.	पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी)
		3.	उत्तरी राजस्थानी (मेवाती)
		4.	दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)
4.	पहाड़ी	1.	पश्चिमी पहाड़ी
		2.	मध्यवर्ती पहाड़ी
5.	बिहारी	1.	भोजपुरी 2. मगही 3. मैथिली

वर्तमान समय में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में स्वीकार किया जाता है परन्तु हिन्दी को पूर्णतः समझने हेतु उसके अंतर्गत आती इन पाँच उपभाषाओं और 17 बोलियों का समाविष्ट करना अनिवार्य बन पड़ता है। इन पर विस्तार से चर्चा कर ही हिन्दी भाषा की सम्पूर्णता से परिचित हुआ जा सकता है जोकि निम्न से दी जा रही है।

1. खड़ी बोली : इस बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न पश्चिमी हिन्दी से स्वीकार की जाती है। इस शब्द का अर्थ अनेक प्रकार से किया गया है। पहले मतानुसार 'खड़ी' शब्द का अर्थ है (खरी) अर्थात् शुद्ध, दूसरे मतानुसार 'खड़ी' शब्द का अर्थ है खड़ा (स्टैंडिंग)। कुछ लोग इसका सम्बंध इसके प्रयोग के स्वभाव और प्रभाव से जोड़ते हुए ध्वनि–विशेष के आधार पर ही इस नाम को स्वीकार करते हैं। इसे कौरवी भी कहा जाता है। खड़ी शब्द को मुख्यतः दो अर्थों में देखा गया है–एक अर्थ है साहित्यिक हिन्दी खड़ी बोली और दूसरा–हिन्दी तथा मेरठ के आस–पास बोली जाने वाली जन भाषा या लोक बोली। दिल्ली, मेरठ के इर्द–गिर्द के अतिरिक्त इस बोली का प्रयोग मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, रामपुर, सहारनपुर, देहरादून का मैदानी भाग आदि में किया जाता है। लोक साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली बहुत संपन्न है इसमें नाटक, लोककथा, लोकगीत आदि पर्याप्त मात्राा में मिलते हैं। हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी तथा दक्खिनी एक सीमा तक खड़ी बोली पर आधारित हैं।

2. ब्रजभाषा : ब्रजभाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ। कृष्ण के जन्म–स्थान ब्रज–मण्डल की बोली होने के कारण इसे ब्रजभाषा का नाम दिया गया है। 'ब्रज' शब्द और इस भाषा के नामकरण को निरूपित करते हुए भोलानाथ तिवारी लिखते हैं – 'ब्रज का पुराना अर्थ 'पशुओं या गौओं का समूह' या 'चारागाह' आदि है। पशु–पालन के प्राधान्य के कारण यह क्षेत्रा ब्रज कहलाया, और इसी आधार पर इसकी बोली ब्रजभाषा कहलाई।' इसका केन्द्र मथुरा रहने पर भी इसके अंतर्गत आगरा, मैनपुरी, ऐटा, धौलपुर, बदायूँ, अलीगढ़ आदि क्षेत्रा विशेष रूप से आते हैं। लोक साहित्य व ललित साहित्य दोनों की दृष्टि से इसे एक समृद्ध भाषा स्वीकार किया जा सकता है। सूरदास, तुलसीदास, नंददास, रहीम, रसखान, बिहारी, देव आदि ब्रजभाषा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि हैं।

3. हरियाणवी : हरियाणवी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। कुछ लोग इसके लिए 'बाँगरू' शब्द का प्रयोग भी करते हैं, जबकि अन्य लोग हिसार के आस–पास बोली जाने वाली एक उपबोली को ही बाँगरू स्वीकार करते हैं। हरियाना शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर भिन्न–भिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ लोग हरि+यान रूप में हरियाना की व्युत्पत्ति स्वीकार करते हैं, ऐसा इसलिए माना जाता है कि द्वापर युग में कृष्ण का दान द्वारिका के लिए इधर से ही गया था। कुछ लोग हरि+अरण्य के रूप में इसी स्वीकार करते हुए इसका आधार हरा वन को मानते हैं जबकि कुछ अन्य लोग हमें अहीर जाति का मुख्य निवास स्थान

मानकर राजपूताना, तेलंगाना के समान अहीर+आना स्वीकार करते हैं। इनमें से कोई भी मत सर्वमान्य नहीं है। हरियाणा का मुख्य भाग व दिल्ली का कुछ देहाती क्षेत्रा इस बोली का विस्तृत भाग है परन्तु पटियाला, नाभा, जीन्द आदि रियासतों के ग्राम्य–क्षेत्राों में भी कुछ स्थान भेद के साथ इस बोली का प्रयोग देखने को मिलता है। हरियाणवी का लोकसाहित्य है, जिसके कई अंश मुद्रित भी हो गये हैं। इसी बीच हरियाणवी साहित्य की चर्चा अलग से भी की जाने लगी है।

4. बुन्देली : बुन्देली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से स्वीकार किया जाता है। यह ब्रजभाषा से काफी समानताएँ रखती है, तभी तो ब्रजभाषा के कवियों ने अनेक बुन्देली शब्दों का प्रयोग भी किया है। इसे 'बुन्देलखण्डी' भी कहा जाता है। यह मुख्यतः बुन्देला जाति के राजपूतों की भाषा है। इसका क्षेत्रा मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सीमा–रेखा पर स्थित झाँसी, छतरपुर, सागर आदि के इर्द–गिर्द का प्रदेश होने के कारण झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिवनी, होशंगावार तथा इनके आस–पास के कुछ भू–भाग इस बोली का क्षेत्रा हैं। इसमें लोक साहित्य पर्याप्त मात्राा में रचा गया है। इसमें 'इसुरो के फाग' अत्याधिक प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण है। यह भी मत है कि लोकगाथा 'आन्हा' बुन्देली की ही एक उपबोली बनाफटी में, अपने मूल रूप में रची गई थी।

5. कन्नौजी : कन्नौजी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। अवधी और ब्रजभाषा की मध्यवर्तिनी होने के कारण दोनों से सामान्य रूप से प्रभावित रही है। संस्कृत के काव्यकुंज और आजकल कन्नौजी नामक भू–भाग की बोली होने के कारण इसे कन्नौजी नाम दिया गया है। यह इटावा, शाहजहाँपुर, फर्रूखाबाद, कानपुर, हरदोई, पीलीभीत आदि कई क्षेत्राों में बोली जाती है। इसमें मात्रा लोक साहित्य ही उपलब्ध है, जिसका कुछ भाग प्रकाशित भी हो चुका है।

6. अवधी : अवधी का विकास किस अपभ्रंश से हुआ, इसको लेकर विद्वानों में प्रायः मतभेद पाये जाते हैं। अधिकतर विद्वान इसका विकास अर्द्ध–मागधी से मानते हैं। जबकि कुछ पालि से समानता के कारण इस मत से सहमत नहीं परन्तु भोलानाथ तिवारी व अधिकतर विद्वान इसका विकास अर्द्धमागधी से ही स्वीकार करते हैं। पूर्वी हिन्दी भाषा वर्ग में अवधी सर्वाधिक प्रमुख बोली है। साहित्यिक दृष्टि से आज की हिन्दी और ब्रजभाषा के समान ही इसका अपना विशिष्ट महत्व एवं स्थान है। इसका केन्द्र अवध (जोकि अयोध्या का विकसित रूप) है। अवध की भाषा होने के कारण इसको अवधी कहा गया है। ग्रियर्सन ने इसको 'बेसवाड़ी' भी कहा है। इसका क्षेत्रा लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बारावंकी आदि हैं। अवधी में लोक साहित्य और ललित साहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्राा में रचे गए हैं और प्रकाशित भी हैं। इसके प्रसिद्ध कवि मुल्ला दाऊद, कुतुबन, जायसी, तुलसीदास, उसमान आदि हैं।

7. बघेली : बघेली का विकास अर्द्धमागधी के ही एक क्षेत्राीय रूप से हुआ है। स्थानीय विशेषताओं के कारण यद्यपि कुछ लोग इसे अलग बोली स्वीकार करते हैं, परन्तु भाषावैज्ञानिक मूलतः इसे अवधी की ही एक उपबोली स्वीकार करते हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार इसे 'दक्षिणी अवधी' कह सकते हैं। बघेला जाति के राजपूत इसका प्रयोग करते आ रहे हैं रीवाँ के आस–पास के क्षेत्रा में इन्हीं का आधिक्य रहने के कारण यह क्षेत्रा 'बघेलखण्ड' कहलाया और वहाँ की बोली बघेली कही जाने लगी। छोटा नागपुर के कुछ प्रदेश, मिर्जापुर, बान्द, नागौद, शहडोल, सतना, मैटर तथा आस–पास के क्षेत्रा इस बोली के प्रदेश हैं। थोड़े बहुत

अपवादों को छोड़कर इसमें केवल लोक साहित्य ही मिलता है।

8. छत्तीसगढ़ी : छत्तीसगढ़ी का विकास अर्द्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से हुआ है। छत्तीसगढ़ उप–प्रदेश की मुख्य बोली होने के कारण इसका नाम छत्तीसगढ़ी पड़ गया। इस भाषा का क्षेत्रा सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रामगढ़, खैरागढ़, जयपुर, दुर्ग, कांकेर आदि स्थानों तक विस्तृत है। कुछ सीमांतों पर इसका मिश्रित रूप बोला–समझा जाता है। इसका प्राचीन साहित्य अत्यंत अल्प है, लोक साहित्य काफी मात्राा में उपलब्ध होता है जिसका प्रकाशन भी हुआ है।

9. पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) : इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। राजस्थानी भाषा का यह रूप राजस्थान के पश्चिम में स्थित जोधपुर, अजमेर, किशनगढ़, मेवाड़, सिरोही, जैसलमेर आदि में बोला जाता है। अपनी स्थानीय विशेषताओं के कारण इसे मारवाड़ी भी कहा जाता है। इसमें लोक साहित्य के साथ ललित साहित्य का सर्जन भी पर्याप्त मात्राा में हुआ है। मीरा के बहुत से पद इसी भाषा में है।

10. पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी) : इस बोली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यों तो इसका प्रचलन राजस्थान के अनेक पूर्वी भागों में है अजमेर और किशनगढ़ आदि परन्तु इस बोली का केन्द्र जयपुर है जिस कारण इसको जयपुरी भी कहते हैं। प्राचीन काल में इस क्षेत्रा को ढूढांण कहा जाता था परिणामस्वरूप कुछ लोग इसी बोली को ढूढांणी भी कहते हैं। इसमें केवल लोक–साहित्य ही उपलब्ध है।

11. उत्तरी राजस्थानी (मेवाती) : इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यह राजस्थान के उत्तरी क्षेत्राों में बोली जाती है, इस भू–भाग को मेओ जाति के क्षेत्रा 'मेवात' से जाना जाने के कारण इस बोली को मेवाती भी कहा जाता है। इस मेवात क्षेत्रा के अन्तर्गत अलवर, गुडगाँव, भरतपुर आदि आते हैं। इसका एक मिश्रित रूप गुड़गाँव, दिल्ली, करनाल के पश्चिमी क्षेत्राों में बोला जाता है, इसे अहिरवारी या अहीरवारी कहा जाता है। इसमें केवल लोक साहित्य मिलता है।

12. दक्षिणी राजस्थानी (मालवी) : इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यह राजस्थान के दक्षिणी उपभागों की बोली है। इसके प्रमुख क्षेत्रा इंदौर, उज्जैन, देवास, खलान, भोपाल, हौशंगाबाद आदि हैं। यह क्षेत्रा मालवा होने के कारण इसकी प्रतिनिधि बोली मालवी मानी जाती है, इसी कारण पूरे क्षेत्रा की भाषा का अन्य भाषा वैज्ञानिक नाम मालवी रखा गया है। इसमें लोक साहित्य अधिक रचा गया है।

13. पश्चिमी पहाड़ी : इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसका सीमा प्रदेश जौनसार, सिरमौर, शिमला, मण्डी, चम्बा और इसके आस–पास के पहाड़ी क्षेत्रा हैं। इस बोली में कुछ साहित्य तथा लोक साहित्य पर्याप्त मात्राा में मिल जाता है।

14. मध्यवर्ती पहाड़ी : इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से ही हुआ है। इस बोली का क्षेत्रा गढ़वाल और कुमायूँ का पहाड़ी प्रदेश है। यह गढ़वाली और कुमायूँनी दो बोलियों का एक समूह अथवा वर्ग है, परन्तु दोनों बोलियों का व्यक्तित्व अलग–अलग हैं। इस बोली में लोक साहित्य पर्याप्त मात्राा में मिलता है तथा कुछ ललित साहित्य भी रचा गया है।

15. भोजपुरी : इसका विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। यह हिन्दी भाषा के अंतर्गत बिहारी उपभाषा वर्ग की प्रमुख बोली है। इसका क्षेत्रा बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलियां, गोरखपुर, आजमगढ़, बस्ती शाहबाद, चन्पाटन, साटन तथा इसके आस–पास के क्षेत्रा हैं। इसका प्रमुख क्षेत्रा काशी जनपद है। बिहारी प्रांत के शाहबाद जिले के भोजपुर गांव के नाम पर इसका नाम भोजपुरी पड़ा है। हिन्दी

प्रदेश में इस बोली को बोलने वालों की संख्या अधिक स्वीकार की गई है। इसमें लोक साहित्य प्रचुर मात्राा में रचा गया है।

16. मगही : इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। यह बिहारी उपभाषा वर्ग की दूसरी प्रमुख बोली है। इसका नाम संस्कृत के 'मगध' से विकसित 'मगह' के आधार पर किया गया है। पटना, गया, हजारीबाग, पलामू, मुंगीर, भागलपुर तथा आस–पास के कुछ क्षेत्रा इसी की सीमा में आते हैं। गंगा के दक्षिण में शाहबाद जिले के अतिरिक्त पूरे दक्षिण बिहार में बोली समझी जाती है। इस पर भोजपुरी और मैथिली दोनों का प्रभाव भी देखने को मिलता है। इसका लोक साहित्य लोकगीत और लोक कथाओं से पर्याप्त समृद्ध है। कुछ मात्राा में ललित साहित्य भी उपलब्ध होता है।

17. मैथिली : इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। हिंदी और बांगला क्षेत्रा की संधिस्थल पर इसका प्रचलन अधिक है। मिथिला प्रदेश की बोली होने के कारण हमें मैथिली नाम दिया गया है। बिहार प्रांत के उत्तरी भाग में इसका प्रचलन है। पूर्निया, मुजफ्फरपुर, मुंगेट आदि इसकी सीमा में आते हैं परन्तु दरभंगा का इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल से इस बोली में साहित्य रचना होती आ रही है। लोक साहित्य भरपूर मात्राा में रचा गया है। जबकि ललित साहित्य भी उपलब्ध होता है। हिन्दी साहित्य में विद्यापति जैसे रससिद्ध कवि इसी बोली की देन हैं। इनके अतिरिक्त गोविंददास, रणजीतलाल, हरिमोहन झा आदि इसके साहित्यकार हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में हिन्दी का जो रूप हमारे समक्ष उपलब्ध है अथवा स्वीकृत है वह अपनी 17 बोलियों के मिश्रण से ही एक सही और सार्थक रूप में पूर्ण कहलाता है। हिन्दी की यही पाँच उपभाषाएँ और उनकी बोलियां अपने सम्पूर्ण रूप से ही हिन्दी का अस्तित्व गढ़ती है। हिन्दी भाषा आज अपने व्यापक कलेवर के कारण ही अत्यधिक सुदृढ़ और समृद्ध बन पायी है।

1.4.3 खड़ी बोली, ब्रजभाषा और अवधी की विशेषताएँ

भौगोलिक दृष्टि से खड़ी बोली उस बोली को कहते हैं, जो रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अम्बाला, कलसिया और पटियाला के पूर्वी भागों में बोली जाती है। खड़ी बोली एक जनपदीय बोली रही है। इसमें थोड़ा–बहुत लोक साहित्य मिलता है, किन्तु आज खड़ी बोली ने गद्य के विकास के कारण अपना स्थान साहित्यिक भाषा के रूप में बना लिया है। आज खड़ी बोली, बोली न रह कर गद्य–पद्य के सृजन का माध्यम है। प्रत्येक भाषा के शब्दों को अपनी भाषिक प्रवृत्ति के अनुरूप ढाल लेने की क्षमता तथा वैज्ञानिक शब्दावली को अपना लेने की प्रवृत्ति इसे आज विश्व सम्पन्न भाषाओं के समकक्ष खड़ा कर देती है।

दिल्ली के मुसलमान शासकों के प्रभाव तथा व्यापकता के कारण खड़ी बोली और हिन्दी समानार्थी बन गई। 14वीं शताब्दी में सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने हिन्दी (भारत के मुसलमानों की भाषा) में काव्य रचना की, उसकी मुकरियाँ तथा पहेलियाँ खड़ी बोली में है, परन्तु ब्रज भाषा और अवधी भाषा काव्य भाषाएँ होने के कारण खड़ी–बोली साहित्यिक भाषा नहीं बन सकी। किन्तु आधुनिक काल में खड़ी बोली ब्रजभाषा के समानान्तर खड़ी होती है। पहली बार इस भाषा का गद्यात्मक प्रयोग हुआ और कविता के क्षेत्रा में इस भाषा ने नवयुग, नई धारा को जन्म दिया। भारतेन्दु युग में यह गद्य की भाषा बन गई। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में काव्य रचना भी की। इसके पश्चात् आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली को काव्यभाषा बनाने के लिए आन्दोलन

किया। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, जयशंकर प्रसाद, निराला आदि कवि खड़ी बोली में कविता की रचना करने लगे। इस प्रकार द्विवेदी युग में खड़ी बोली साहित्य की भाषा के रूप में विकास को प्राप्त हुई।

1.4.3.1 खड़ी बोली की विशेषताएं

खड़ी बोली के अनेक नाम बताये जाते हैं–हिन्दुस्तानी नागरी, सरहिन्दी और कौरवी; किन्तु खड़ी बोली इस समय अधिक प्रचलित है। इसके नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है कुछ का मानना है कि खड़ी मूलतः खरी है और इसका अर्थ है शुद्ध। लोगों ने इस बोली का साहित्य में प्रयोग करते समय जब अरबी–फारसी के शब्दों को निकाल कर इसे शुद्ध रूप मे प्रयुक्त करने का प्रयत्न किया तो इसे 'खरी बोली' कहा गया, जो बाद में खड़ी बोली हो गया। सुनीति कुमार चैटर्जी का मानना है कि खड़ी बोली का अर्थ है, जो खड़ी हो अर्थात् 'पड़ी' का उलटा। पुरानी ब्रज, अवधी आदि पड़ी बोलियाँ थीं अर्थात् आधुनिक काल की मानक भाषा नहीं बन सकी। इसके विपरीत यह बोली आवश्यकता के अनुरुप खड़ी हो गई अतः खड़ी बोली कहलाई। कुछ विद्वानों ने खड़ी का अर्थ 'कर्कश' किया क्योंकि यह बोली ब्रज की तुलना में कर्कश है। आचार्य राहुल सांकृत्यायन ने इसे कुरु जनपद से सम्बंधित बताते हुए इसका नाम कौरवी बताया है। ग्रियर्सन ने इसे देशी हिन्दुस्तानी कहा है।

शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित खड़ी बोली की ध्वनिगत विशिष्टता और पहचान की दृष्टि से कहा जा सकता है कि 1. खड़ी बोली आकारान्त प्रधान है जैसे–करता, किया, करना, करेगा, बड़ा, छोटा, खोटा, घोड़ा, छोरा 2. ऐ/औ/का उच्चारण इतना संवृत्त होता है कि क्रमशः ए/औ/सुनाई देते हैं जैसे बेठ, पेर, ओर या होर, दोरा (बैठ, पैर, और, दौरा के लिए)। 3. ह के पहले अ का उच्चारण ए की तरह सुना जाता है जैसे केह्य (कह्या), रहे (रह)। 4. ठेठ बोली में (ड़) के स्थान पर उ, ल, के स्थान पर ळ, न के स्थान पर ण, जैसे – गाडी (गाड़ी), बडा (बड़ा), माळ, नीळा (माल, नीला) जाणा (जाना), लेण–देण (लेन–देन) 5. खड़ी बोली की एक और बड़ी विशेषता है दीर्घ स्वर के बाद द्वित और संयुक्त व्यंजन उच्चरित होता है; जैसे। बाप्पू, बेट्टा, रान्नी या राणी, लोट्टा, पूच्छा तथा पुच्छा। बांगऊँ और खड़ी बोली में अन्य हिन्दी बोलियों की अपेक्षा बलाघात कुछ ज़ोर से पड़ता है जिसके कारण पूर्ववर्ती दीर्घ अक्षर तो ह्रस्व हो ही जाता है, कभी–कभी ह्रस्व स्वर का लोप भी हो जाता है, जैसे मठाई (मिठाई), कट्ठा (इकट्ठा) में।

खड़ी बोली के संज्ञा शब्दों के प्राय रूप वही हैं जो साहित्यिक हिन्दी में है। व्यंजनांत संज्ञाओं के तिर्यक् के एक वचन के ओं तथा ऊँ अंत होते हैं; यथा घरों में (घर में), घरूँ पड़ रहा (घर पर रहा)। बहुवचन के रूप में 'ऊँ' से अंत होता है जैसे–मरदूँ का (मर्दों का), बेटयूँ का (बेटियों का) आदि।

कारकों के अर्थ में निम्नलिखित परसर्ग प्रयुक्त होते हैं – कर्ता – नै, नें, णै

कर्म तथा सम्प्रदान – को, कूँ, नूँ, ने/के

करण तथा अपादान – तें, सेती, से, सो, सूं, सै

अधिकरण – में, पै, प, पर

सम्बन्ध – का, के, की

सर्वनाम के विशिष्ट रूप इस प्रकार हैं– मैं, मुझ, मेरा, हम, हमें, हमारा या म्हारा। तू, तुझ, तेरा, तम, तमें, तुम्हारा या थारा। यू, यों, इस, आ, वोह, जो या जोण। के या कोण। के (क्या), आप, अपणा। को (कोई) आदि।

क्रिया विशेषण – कै (कितने), असे (ऐसे), जसे (जैसे), इब (अब), इभी (अभी), जिब–तिब (जब–तब), ह्याँ (वहाँ), जाँ (जहाँ), कीकर (कैसे), क्यूँ (क्यों) नूँ (यों), जूँ (ज्यों) आदि।

क्रिया रूप–खड़ी बोली में भी हिन्दी के समान हैं किन्तु 'है' का उच्चारण 'हे' और है के स्थान पर 'सै' का भी प्रयोग होता है; जैसे लाया करे हैं। सै (लाया करता है)। दूसरी विशेषता यह है कि वर्तमान कृदंत का जो रूप साहित्यिक हिन्दी में काल और अर्थ बताने में प्रयुक्त होता है, उसकी जगह खड़ी बोली में क्रिया रूप से विकसित अकृदंतीय प्रयोग चलते हैं–

वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ (मारता हूं आदि)

1.	मारूहूँ	मारें हें
2.	मारे हे	मारो हो
3.	मारे हे	मारे हें

सम्भावनार्थ (मारता)

1.	मारूँ	मारें
2.	मारे	मारो
3.	मारे	मारें

भूत अपूर्ण निश्चयार्थ के मारूँ या, मारे था, भविष्यत् काल के रूप इनमें गा, गे, गी जोड़कर सामान्य हिन्दी की तरह होता है इनका उच्चारण भले ही – मारूँग्गा, जाएँग्गा होता है। थोड़ा पश्चिम में पंजाबी प्रभाव होने के कारण खांग्गा, जांग्गे आदि भी पाए जाते हैं।

1.4.3.2 ब्रज भाषा की विशेषताएँ

अपनी सरलता और सुन्दरता के कारण ब्रजभाषा मध्यकाल में अपनी समृद्धि एवं साहित्य के दृष्टिकोण से अपने पूर्ण यौवन पर भी। उस समय ब्रजभाषा को उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा होने का गौरव प्राप्त था। पश्चिमी हिन्दी की बोलियों के अध्ययन के लिए ब्रजभाषा कुंजी का काम करती है। एक ओर बुन्देली और कन्नौजी, दूसरी और राजस्थानी बोलियाँ ही नहीं गुजराती तक और उत्तर भारत में गढ़वाली और कुमाऊनी की प्रकृति को ब्रजभाषा की जानकारी के बाद सरलता से समझा जा सकता। धौलपुर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा के क्षेत्रों में अभी तक यह शुद्ध स्वरूप में बोली जाती हैं। भरतपुर, गुड़गाँव, करौली के आस–पास इस पर बुन्देली का प्रभाव है। बरेली, बुलन्दशहर में खड़ी बोली और एटा, इटावा, मैनपुरी के समीप कन्नौजी के प्रभाव से मिश्रित होकर यह बोली व्यवहार में आती है। इसकी मुख्य उपबोलियाँ भुक्सा, अन्तर्वेदी, भरतपुरी, डांगी, माथुरी आदि हैं। ब्रज भाषा शुद्ध रूप में मथुरा, अलीगढ़ और आगरा जिलों में बोली जाती है।

शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित ब्रजभाषा में साहित्य रचना बारहवीं शताब्दी से होना आरम्भ हुआ। उस समय

इसका नाम पिंगल था। इसके बाद 16वीं शताब्दी से कृष्ण भक्ति का आश्रय पाकर ब्रजभाषा ने बहुत उन्नति की। अष्टछाप के कवि (सूरदास, नंददास आदि) और रीतिकालीन केशवदास सेनापति, बिहारी, मतिरास, घनानन्द आदि समस्त कवियों ने ब्रजभाषा में अपनी रचनाएँ लिखीं। आधुनिक काल में भारतेन्दु ने खड़ी बोली का उद्धार करते हुए भी काव्य की भाषा ब्रज ही रखी। किन्तु खड़ी बोली के विकास के कारण ब्रज भाषा धीरे–धीरे लुप्त होने लगी।

हेमचन्द्र के 'प्राकृत व्याकरण' में दिए गए शौरसेनी अपभ्रंश के दोहों से ब्रजभाषा का विशेष संबंध है। निम्नलिखित शब्दों और पदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है–अइसो, एउं, एत्तुलो (इतना); ओक्खल, काहारो (कहार); कुम्पल (कोंपल); कोलहुओ (कोल्हू); खोडि (खोरि); गड्डो (गड्ढा); छलियो (छलिया); झुप्पड़ा (झोंपड़ा); दोरो (डोरा); बप्पो (बावा), बाउल्लो (बावला), सलोणी (सलोनी) आदि।

अवहट्ट और पिंगल साहित्य में ब्रजभाषा कुछ अधिक स्पष्ट रूप में आई है। प्राकृत पैंगलम, उक्ति–व्यक्ति प्रकरण, कीर्तिलता, पृथ्वीराज रासो में ब्रजभाषा के प्रयोग देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार नाथों और संतों की बानियों में ब्रजभाषा का प्रयोग देखा जा सकता है। 'गुरु ग्रंथ साहिब' मे कुछ ऐसे कवियों की बानियाँ संगृहीत हैं जो ब्रज प्रदेश के बाहर के थे, परन्तु ब्रजभाषा में लिखते थे। सूरदास पूर्व ब्रजभाषा की विशेषताएँ इस प्रकार हैं– 1. अंत में 'अ' का उच्चारण 2. स्वरों में अनुनासिकता आ गई थी जैसे कहूँ, महँ, अँधार, जो, विवाँण, उपहासिहिं, हिये, जो। 3. बहुत से शब्दों में 'ण' का प्रयोग जैसे–पुराण, गुणियर, नरयण, कवण बाद की ब्रजभाषा में 'ण' का प्रयोग नहीं। 4. कर्ता के साथ नैं (ने) का प्रयोग मिलने लगता है। 5. परसर्ग–नैं, कहूँ, कौ, को, कूँ, सौं, सम, तै, ते; कौ, के, की कउ; माँझि, माँहि; में, मेंहि, मंझि। 6. सर्वनाम–हुऊँ, हौं; मई, मो, मोहि, मोरो, मोरी, मेरे; तुम, तुम्हारे; सो; ताको, वहइ, वै, उन/को/कौण, वे/वै, आपणो। 7. क्रिया–हौं, भये, है, भई, ह्यै, हैं 8. अव्यय – अब, तब, जब, तिहाँ, कहाँ, आगे, भीतर आदि।

ब्रजभाषा की ध्वनियों की विशिष्टता इस प्रकार है–1. ब्रजभाषा में 12 स्वर–ध्वनियों का प्रयोग होता है : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ए, आँ, ओ, ऐ, औ। इनमें 'अ' का उदासीन रूप भी प्रयुक्त होता है। यह शब्द के अंत में आता है : बहुअ, बढ़अ। 2. ऐ/औ/ब्रजभाषा की पहचान की विशेष ध्वनियाँ है। जैसे–तो, को, पे, में, ने के स्थान पर तौ, कौ, पै, मैं, नै। 3. खड़ी बोली में शब्द के अन्त में जो/आ/मिलता है, उसके स्थान पर ब्रजभाषा में/ओ/(कभी–कभी औ) पाया जाता है जैसे–आयो, होतो, कह्यो, जाऊँगो, दूजो आदि। 4. खड़ी बोली/ड़/की जगह/र/ का प्रयोग मिलता है जैसे–जुरतो (जुड़ता), निबेरि (निबेड़ कर), परे (पड़े) आदि। 5. ह का लोप (साउ्कार) साहुकार, बारह (बारह), बऊ (बहू) 6. न का ल लम्बरदार (नम्बरदार)

परसर्ग

कर्ता	–	ने, नै	कर्म – को, कौ, कौं, कूँ, कु, कैं, कें
करण अपादान	–	सो, सों, सौं, तै, ते, तें	सम्बन्ध – को, के, कै, की, कि
अधिकरण	–	में, मैं, माँझ, पे, पै, पर	
अन्य परसर्ग	–	काज, लए, लगि, दिग, नाई, पाछै, ताई, लौ।	

विशेषण

विशेषण का प्रयोग खड़ीबोली के समान होता है, केवल पुल्लिंग एकवचन में रूप का अन्तर है; जैसे–दूजो, दूजै, दूजी, उल्टो, उल्टै, उल्टी आदि। संख्यावाची शब्दों में द्वै, तीनि, सोरह, पहिलो, दूजो या बियो; दोउ या उभै, तीन्यों उद्धरणीय हैं।

सर्वनाम

उत्तम पुरुष	–	मैं, हौं, मो (कौ).....मोहि, मुजकौ, मेरौ; हम, हमन, हमें, हमहिं, हमारौं।
मध्यम पुरुष	–	तू, तूँ, तैं, तो (कौ).....तोहि, तुजकौ, तेरौ; तुम, तुमहिं, तुम्हैं, तुम्हारौ, तिहारो
अन्य पुरुष	–	वौ, वह, वा (कौ).....वाहि; वे, वै, उन, उन्हें
		ए, यह, या (कौ).....याहि; ये, इन, इन्हें, सो, तौन, ताहिं, तिन्हें, तिन (कौं)....इत्यादि।
संबंधवाचक	–	जो, जे, जौ, जौन; जाहि, जा (कौं); जिन
प्रश्नवाचक	–	को, कौन; का, काहि; कहा (क्या)
अनिश्चयवाचक	–	कोइ, कोऊ, काहू; कछु

अव्यय

अजौं, पुनि, अजहुँ, सदाई, ह्याँ, इत, इतै, तहँ, जित, कतहूँ, तौ, जौ, लौ; सामुहें (सामने), अनत (अन्यत्रा); जिमि (ज्यों), किमि (कैसे), मनौ (मानो), मनु, जनु, वर, भल, नहिं, नहीं, नाहीं, नाहिन, न, ना, औ, और, कै, तौ, जौ, पै, ता, तै आदि का प्रयोग होता है।

क्रिया रूप – ब्रजभाषा में क्रिया के विभिन्न रूपों का प्रयोग इस प्रकार होता है–

वर्तमान काल	–	हौं (हूँ के लिए)
भूतकाल	–	हो, हतो, हुतौ, तो (था के लिए)
		हे, हते, हुतो, ते (थे के लिए)
		भयो, भयौ, भो (हुए), भए (हुए), भई (हुई),
भविष्यत्काल	–	हौऊँ (होऊँया हूँ)
		ह्वै है, ह्वै हैं।

क्रिया विशेषण

काल वाचक क्रिया विशेषण के लिए निम्न रूपों का प्रयोग होता है–अबै, तबै, जबै, कबै, आजु, काल, परौ (परसों), तरसौं, तरौं। स्थानवाचक – याँ, इहाँ, हियाँ, ह्याँ, हियन, हतै, जाँ, याँ, हुआ, उतै, कितै। दिशावाचक–इत, उत, कित, तित आदि।

1.4.3.3 अवधी भाषा की विशेषताएँ

पूर्वी हिन्दी भाषा वर्ग में अवधी अपना विशेष स्थान रखती है। साहित्यिक दृष्टि से आज की हिन्दी और

ब्रजभाषा के समान ही अवधी का अपना विशिष्ट महत्व एवं स्थान हैं। इसका केन्द्र अवध जो कि 'अयोध्या का विकसित रूप है ही स्वीकार किया गया है। अवध की भाषा होने के कारण ही इसका नाम अवधी पड़ा। इसका क्षेत्रा लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, प्रतापगढ़, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तानपुर, बाराबंकी आदि विद्वानों में अलग–अलग धारणाएँ व मत प्रचलित हैं। ग्रियर्सन ने अपने मत में अवधी को शौरसेनी एवं मागधी के बीच की अर्द्धमागधी से उत्पन्न स्वीकार किया है जिस हेतु वह अवधी के पश्चिम में स्थित कन्नौजी, ब्रज आदि बोलियों को शौरसेनी से उद्भूत तथा पूर्व की भोजपुरी को मागधी से उत्पन्न स्वीकार करते हैं। कुछ विद्वान् पालि से इसकी समानता को ध्यान में रखते हुए अपना मत देते हैं जैसे बाबूलाल सक्सेना का कहना है कि 'अवधी अर्द्धमागधी से भाषागत विभिन्नताओं के कारण बहुत दूर है, परन्तु पालि से पर्याप्त साम्य और नैकट्य प्रतीत होता है।' परन्तु अधिकतर विद्वान व भोलानाथ तिवारी के अनुसार इसका विकास अर्द्धमागधी से ही स्वीकार करते हैं, अधिकांश विद्वानों की दृष्टि से यही स्वीकार्य एवं मान्य कहा जा सकता है। अवधी में लोक साहित्य व ललित साहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्राा में उपलब्ध होते हैं। मुल्ला दाऊद, कुतुबन, जायसी, तुलसीदास, उसमान आदि इस भाषा के प्रमुख कवि हैं।

अवधी को मुख्य रूप से तीन कालों में विभक्त किया जाता है जिसके अंतर्गत प्रथम काल आरम्भ से लेकर 1400 ई0 तक, द्वितीय काल 1400 ई0 से लेकर 1700 ई0 तक और तृतीय काल 1700 ई0 से लेकर अब तक। इन्हें क्रमशः विकास का प्रथम काल, विकास का द्वितीय चरण (काल) तथा विकास का तृतीय चरण (आधुनिक काल) भी कहा जा सकता है। अवधी के विकास में इन तीनों चरणों में से द्वितीय चरण सर्वाधित महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के अंतर्गत सूफी काव्यधारा, प्रेमाश्रयी काव्यधारा तथा रामकाव्य धारा के कवियों ने साहित्य का सृजन किया जोकि आगे भी प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण है जैसे जायसी कृत 'पद्मावत' व तुलसी कृत 'रामचरितमानस' इस भाषा के सिरमौर ग्रंथ हैं। अवधी को स्पष्ट रूप से समझने हेतु इसकी व्याकरणिक व ध्वनि की विशेषताओं पर ध्यान अनिवार्य बन पड़ता है जोकि निम्न रूप से है।

अवधी की प्रमुख विशेषताएँ

1. अवधी भाषा में शब्दांत में व्यंजन बोले जाते हैं–नखत, ऊख, मन, हिय, काज, अचरज, रात, जीभ आदि। 2. प्राचीन स, श, ष तीनों ही के स्थान पर अवधी में 'स' मिलता है–साँप, साँस (श्वास), सोरह (षोडश)। 3. 'ऋ' के स्थान पर 'रि' आता है–रिसि (ऋषि)। 4. हिन्दी की अन्य बोलियों की भांति 'ह' का आगम–हिच्छा (इच्छा), सहीस (सईस)। 5. 'ल' के स्थान पर 'र' हो जाता है– अँजुरी (अंजलि), मूसर (मूसल), फर (फल), हर (हल) आदि।

अवधी में संज्ञा के तीनों रूप मिलते हैं : सामान्य, दीर्घ और दीर्घतर। जैसे–घोड़ा, घोड़वा, घोड़उना या घोरौना; कुत्ता, कुतवा, कुतउना; बेटी, बिटिया, बिटइया; किन्तु साहित्य में तीसरा रूप प्रायः नहीं मिलता। संज्ञा और विशेषण के लिंग के सम्बन्ध में पश्चिमी हिन्दी में कड़े नियम हैं, अवधी के नियम ढीले हैं तथा बिहारी एक प्रकार से इन नियमों से मुक्त है। व्यंजनांत संज्ञा पदों के कर्ता एकवचन के रूपों में अवधी में 'उ' लगता है यथा–घरू, मनु, बनु आदि और बहुवचन में 'ऐ' लगता है–घोड़वे, घोड़वने।

परसर्गों का विवरण इस प्रकार है–

कर्ता	–	(खड़ी बोली का 'ने' पूर्वी हिन्दी में नहीं है।)
कर्म–सम्प्रदान	–	का, क, काँ, कह्याँ, बाड़े
करण–अपादान	–	से, सेनी, सेन; साहित्यिक अवधी में सउँ, सौं, तें
सम्बन्ध	–	के, कर, के, क, की, कै
अधिकरण	–	में, पर, म साहित्य में महुँ, महँ, माँहा, माँझ भी।

सर्वनाम का प्रयोग अवधी भाषा में इस प्रकार होता है–

उत्तम पुरुष	–	मैं, मई, मो, मोहि, मोर (सम्बन्ध वाचक)
		हम, हमार, हमहिं
मध्यम पुरुष	–	तू, तै, तई, तो, तोहि; तोर (सम्बन्ध)
		तुम, तुम्ह, तुम लोग; तुम्हार (सम्बन्ध)
अन्य पुरुष	–	वह (आधुनिक ऊ); ओ, ओहि; ओकर (सम्बन्ध)
संबंधवाचक	–	जो, जेइ, जवन,
प्रश्नवाचक	–	के, कवन, का ('क्या' खड़ी बोली में)
अनिश्चयवाचक	–	कोइ, कोउ, काज, कछु, कछुक, कुछ
निजवाचक	–	आपु, आप; आपुहिं, आपन।

अवधी भाषा में कुछ शब्द खड़ीबोली से भिन्न है जैसे–दुइ, तीनि, छा, एगारा, पहिल, दोसर, दूजा, तिसरे। अवधी के अव्यय भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है–कालि (कल), भोर (सवेरे), पुनि (फिर), बहोरी (फिर), बेगि (जल्दी), पाछे (फिर), इहाँ, उहाँ, तहाँ, तहवाँ, सउहँ (सामने), निअरे, इत, उत, इमि (यों), तस, जस, नाईं, जिनि ( ), किन (क्यों न), अवसि (अवश्य) बरु या बरुक (भले ही), ऊया हू (भी)।

क्रिया पद – आटे, बाटे, है, और (वर्तमान), भए, रहे (भूतकाल)। संज्ञार्थक क्रिया–देखब (देखना), करब (करना), देखिबे का (देखने को), कृदंत रूप – सिराति न राति, पाइत भोग्, देखिअत; नारद जानेउ, रथ समेत रजि थाकेउ।

क्रिया विशेषण : 1. यहाँ–इहँ, इहाँ, एठियाँ, हियाँ। 2. वहाँ–उहाँ, कहाँ, ओठियाँ, हुआ। 3. जहाँ–जहँ, जहाँ, जेठियाँ, जेठियन, जहवाँ। 4. कहाँ–कह, कहाँ, कहवाँ, केठियाँ, केठियन। 5. इधर–अइसी, एहकी। 6. उधर–ओहकी, वइसी आदि।

परसर्ग में – क, का, कां, कहयाँ, कहँ, कऊँ, कहूँ, कई, से, ते, रे आदि प्रयोग मिलते हैं।

सर्वनाम में – यह, मो, मोर, तुई, तोर, ई, एकर, ऊ, ओकर आदि एकवचन के लिए हैं तो हम, हमारे, तुम, तोहार, ए, इनकर, ओ, ओनकर आदि का प्रयोग बहुवचन में मिलता है।

अव्यय – अवै, कवै, कहँ, एहसी, कइसी, ईजून (अब) नियरे (निकट) अन्ते (अन्यत्रा) हुवाँ (वहाँ) आदि प्रयोग मिलता है।

1.4.3.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और स्वरूप पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

1.4.4 सारांश

हिन्दी भारोपीय परिवार की भाषा है। अब तक हिन्दी की पांच उपभाषाएं और सत्राह बोलियां स्वीकार की जा चुकी हैं। हिन्दी भाषा का उद्‌भव अपभ्रंश के शौरसैनी, मागधी, अर्द्धमागधी आदि रूपों से हुआ है। हिन्दी भाषा को भारत के संविधान में राजभाषा की मान्यता प्रदान की गई है।

1.4.5 प्रश्नावली

1. पश्चिमी हिन्दी की बोलियों के नाम लिखो।
2. राजस्थानी भाषा की बोलियाँ कौन सी हैं?
3. पश्चिमी पहाड़ी का क्षेत्रा कौन सा है।
4. अवधी भाषा के साहित्यकारों के नाम लिखो।
5. उपभाषा किसे कहते हैं?
6. खड़ी बोली की विशेषता क्या है?
7. खड़ी बोली को और किन नामों से पुकारा जाता है?
8. ब्रज भाषा की ध्वनियों की विशिष्टता लिखें।
9. अवधी भाषा की विशेषता लिखें।
10. अवधी के विकास के विषय में लिखें।

1.4.6 सहायक पुस्तकें

1. हिन्दी भाषा : मानक स्वरूप – राजिन्द्र कौर अनेजा
2. हिन्दी भाषा : इतिहास और स्वरूप – डॉ. राजमणि शर्मा
3. हिन्दी भाषा का विकास – डॉ. श्याम सुन्दर दास
4. हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास – उदयनारायण तिवारी

Mandatory Student Feedback Form

https://forms.gle/KS5CLhvpwrpgjwN98

Note: Students, kindly click this google form link, and fill this feedback form once.